मूल्यः ₹50

सितंबर–अक्टूबर 2025

आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

फल फूल

भाकृअनुप
ICAR

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

इस अंक में

- सेब और मटर में जीवामृत प्रयोग
- पोषण से भरपूर उपेक्षित सब्जियां
- शीतोष्ण फल वृक्षों में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन
- हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली से स्ट्रॉबेरी उत्पादन

परागणक आवास पुनर्स्थापन किट

परागकणकर्ता जीव वैश्विक खाद्य उत्पादन में अहम भूमिका निभाते हैं। विश्व की लगभग 35% फसलें इनकी परागण सेवाओं पर निर्भर हैं। हालाँकि, तेजी से हो रहे आवास विनाश और पुष्प विविधता में कमी के कारण इन कीटों की संख्या में लगातार कमी देखी जा रही है। इस चुनौती का समाधान करते हुए भाकृअनुप-पुष्प विज्ञान अनुसंधान निदेशालय, पुणे ने वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर 'परागणक आवास पुनर्स्थापन किट' विकसित की है। इस किट का मुख्य उद्देश्य कृषि परिदृश्य में पुष्प संसाधनों का संवर्धन करना और परागणकर्ताओं के लिए अनुकूल आवास स्थापित करना है।

निदेशालय द्वारा किए गए क्षेत्रीय अध्ययनों में परागणक जीव विविधता, इनकी आहार ग्रहण प्रवृत्ति और सजावटी फूलों में इनकी आवासीय प्राथमिकताओं का विस्तृत विश्लेषण किया गया। वरिष्ठ वैज्ञानिकों का कहना है कि रंग-बिरंगे, सुगंधित और पराग/मधुरस से परिपूर्ण फूल परागकण जीवों के लिए अत्यंत आकर्षक होते हैं।

इस किट को तैयार करने के लिए ग्रीष्म, वर्षा और शीत ऋतु में फूलने वाली 600 से अधिक सजावटी प्रजातियों/जीनोटाइप्स का आकलन किया गया। साथ ही 153 से अधिक परागणक जीव प्रजातियों जैसे कि मधुमक्खियाँ, मक्खियाँ, भृंग, तितलियाँ और पतंगों को आकर्षित करने की उनकी क्षमता का मूल्यांकन किया गया। ऋतु अनुसार पुष्प संसाधनों की उपलब्धता (मधुरस और पराग) के वैज्ञानिक आँकड़ों के आधार पर यह किट तैयार की गई है।

किट में 20 मौसमी फूलों के बीज, हिंदी और अंग्रेजी में विस्तृत द्विभाषिक पुस्तिका को सम्मिलित किया गया है। इसमें वार्षिक फूलों की कृषि-पारिस्थितिक जानकारी और परागण-अनुकूल खेती की विधियाँ शामिल हैं। इसके अतिरिक्त किट में एक विशेष क्यूआर-कोड युक्त कार्ड भी शामिल है। यह कार्ड पौधों की देखभाल, पुष्प संसाधनों की जानकारी और डिजिटल परागकण डेटाबेस तक आसान पहुँच प्रदान करता है।

जैव विविधता संरक्षण की दिशा में नवाचार

चयनित फूलों को फसलों के साथ रणनीतिक रूप से लगाने से परागणकर्ताओं को आहार और आवास की सुविधा मिलती है। इसके परिणामस्वरूप परागण सेवाएँ बेहतर होती हैं और फसल की उपज एवं गुणवत्ता में सुधार होता है। यह किट विशेष रूप से प्याज, ककड़ीवर्गीय फसलें, अनार, सीताफल और आम जैसी परागकण निर्भर फसलों के लिए लाभकारी है। साथ ही, मधुमक्खी पालकों के लिए यह अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि यह मधुमक्खियों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाकर शहद, मोम और अन्य उत्पादों के सतत उत्पादन को बढ़ावा देती है।

विशेषज्ञों का मानना है कि यह पहल सतत कृषि उत्पादन, जैव विविधता संरक्षण और कृषि पारिस्थितिकी की स्थिरता में महत्वपूर्ण योगदान देगी। यह किट भाकृअनुप - पुष्प विज्ञान अनुसंधान निदेशालय, पुणे में दो आकारों में उपलब्ध है: बड़े क्षेत्रों के लिए 'संस्थागत किट' और छोटे क्षेत्रों के लिए 'किसान किट'।

'परागणक आवास पुनर्स्थापन किट' सतत कृषि, जैव विविधता संरक्षण और पर्यावरणीय स्थिरता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। वैज्ञानिक अध्ययनों पर आधारित यह किट परागणकर्ताओं को अनुकूल आवास और पुष्प संसाधन उपलब्ध करवाते हुए परागण-निर्भर फसलों की उत्पादकता और गुणवत्ता में सुधार करती है। किसानों एवं मधुमक्खी पालकों के लिए समान रूप से लाभकारी यह पहल शहद, मोम और अन्य उत्पादों के सतत उत्पादन को भी प्रोत्साहित करती है। द्विभाषिक पुस्तिका और डिजिटल संसाधन इसकी व्यावहारिकता बढ़ाते हैं। यह किट कृषि पारिस्थितिकी के संतुलन, खाद्य सुरक्षा तथा भविष्य की टिकाऊ खेती सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध होगी।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें

निदेशक,
भाकृअनुप-पुष्प विज्ञान अनुसंधान निदेशालय (ICAR-DFR), जेड कॉर्नर के पास, मुंडवा-मांजरी रोड, हडपसर, पुणे - 411036, ईमेल: dfrseeds@gmail.com
वीडियो आधारित जानकारी: https://youtu.be/P-nx-aJFxCQ

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी
वर्षः 46, अंकः 5, सितंबर-अक्टूबर 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. एस के सिंह** — **अध्यक्ष**
   उपमहानिदेशक (बागवानी)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. टी दामोदरन** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ
4. **डॉ. जगदीश राणे** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान
5. **डॉ. मारकंडे सिंह** — **सदस्य**
   विभागाध्यक्ष
   पुष्प विज्ञान विभाग, भाकृअनुप-भाकृअनुसं, नई दिल्ली
6. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** — **सदस्य**
   कुलपति
   डॉ. वाई एस परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौनी, हिमाचल प्रदेश
7. **श्री शरद पांडे** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री कंवल सिंह चौहान** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिंदी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा

संपादन सहयोग
गजेन्द्र

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाषः 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रतिः रु. 50.00 वार्षिक : रु. 250.00
विशेषांक : रु. 200.00
E-mail : phalphul@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुनः प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय सूची

निदेशक की कलम से

पोषण की खान-अनमोल देसी सब्जियां – **अनुराधा अग्रवाल**

आय — 4
फलों का हिमीकृत परिरक्षण
अजय कुमार त्रिवेदी, विवेक कुमार त्रिपाठी, स्वतंत्र यादव **और** कृपा शंकर यादव

प्रणाली — 8
हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली से स्ट्रॉबेरी का उत्पादन
जरापला प्रशांत, अक्षय तिवारी, दीपिका यादव, योगेश राजवाड़े **और** केवीआर राव

उपयोगिता — 10
विदेशी सब्जियों का बढ़ता महत्व
सीमा ठाकुर, इशांत दत्ता, अनुज कटोच **और** राजेश ठाकुर

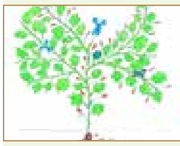
तकनीक — 12
थ्री-जी कटिंग द्वारा लत्तरदार सब्जी उत्पादन में वृद्धि
अल्पना कुमारी, शशांक शेखर सोलंकी, अनुपम आदर्श **और** रणधीर कुमार

दोगुनी आमदनी — 14
लीची के बागानों में मधुमक्खी पालन
सुनील कुमार, अशोक धाकड़, इप्सिता सामल, अंकित कुमार **और** बिकास दास

कमाई — 16
लेट्यूस का लाभकारी उत्पादन
आँचल चौहान, हैप्पी देव शर्मा, दीपा शर्मा **और** रीना शर्मा

विधि — 18
खजूर में परागण
रामकेश मीना, जितेन्द्र गुर्जर **और** महेंद्र कुमार चौधरी

अल्पदोहित — 20
पोषण से भरपूर उपेक्षित सब्जियां
आर.के. सिंह, आकांक्षा सिंह, सौरभ सिंह, बृज बिहारी शर्मा **और** अर्जुन लाल ओला

पौष्टिक — 23
लाल मूली की उन्नत किस्म काशी लोहित
बी.के. सिंह, भुवनेश्वरी एस **और** नीरज कुमार प्रजापति

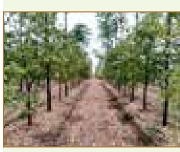
कृषिवानिकी — 25
मेलिया दुबिया का व्यावसायिक उत्पादन
संग्राम चव्हाण, उथप्पा एआर, कृष्ण कुमार जांगिड़, ए अरुणाचलम **और** के सम्मि रेड्डी

प्रबंधन — 28
दार्जिलिंग संतरे की फलमक्खी से सुरक्षा
नताशा गुरुड़, सुजित सरकार **और** चन्दन कुमार

विषय सूची

उर्वरता 30

सेब और मटर में जीवामृत प्रयोग

रंजीत सिंह स्पेहिया, अंकिता धीमान, बंदना धीमान, इंद्र देव **और** राजेश्वर सिंह चंदेल

संरक्षण 34

घड़ा सिंचाई से जल का कुशल उपयोग

भूपेन्द्र सिंह नायक, बी.के.राव, रवि दुप्दल, मिस अनुषा एन.एम **और** कविता जादव

पोषण 36

शीतोष्ण फल वृक्षों में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

राज कुमार, कमल कुमार पाण्डे, एन. के. सिंह, अमित कुमार **और** हरीश चंद जोशी

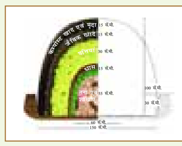

पद्धति 38

ह्यूगेल कल्चर से प्राकृतिक खेती

आर. के. मीणा, तुलिका कुमारी, एस.एल. सिंह **और** रश्मि सिन्हा

संभावनाएं 39

हिमाचल प्रदेश में प्लम फल का उत्पादन

जितेन्द्र कुमार, के. के. प्रमाणिक, संतोष वाटपाड़े, धर्म पाल वालिया **और** दीपक

जानकारी 43

सितंबर-अक्टूबर के बागवानी कार्य

हरे कृष्ण, अरविंद कुमार सिंह, शुभम कुमार तिवारी, राघवेंद्र प्रताप सिंह **और** शेखर सिंह

नवोन्मेष आवरण-II

परागणक आवास पुनर्स्थापन किट

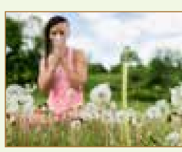

सार-समाचार आवरण-III

- **एरोपोनिक तकनीक से आलू उत्पादन**
- **जलवायु परिवर्तन से बढ़ती परागकण एलर्जी**

निदेशक की कलम से

पोषण की खान-अनमोल देसी सब्जियां

भारतीय रसोई सदियों से सादगी में पोषण और स्वाद का अद्वितीय उदाहरण रही है। लेकिन आज हमारी थाली से वे देसी सब्जियां धीरे-धीरे गायब होती जा रही हैं जो कभी पोषण और औषधीय गुणों की खान मानी जाती थी। आधुनिक जीवनशैली, बाजार की चकाचौंध और विदेशी प्रभाव ने इस देसी खजाने को 'गरीबों का भोजन' कहकर उपेक्षित कर दिया है। बाजारवाद के इस दौर में जब लोग विदेशी फलों-सब्जियों और प्रसंस्करित खाद्य उत्पादों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, तब देसी सब्जियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। इन सब्जियों में कुछ ऐसी हैं, जो न केवल बेहद पोषक हैं, बल्कि रोगों से लड़ने में भी कारगर होती हैं। ये देसी सब्जियां न केवल सस्ती और सुलभ हैं, बल्कि स्थानीय मौसम और शरीर की जरूरतों के अनुरूप भी हैं। हमारी पारंपरिक सब्जियां जैसे भिंडी, करेला, सीताफल, बैंगन, तोरी, मेथी और सरसों का साग केवल स्वादिष्ट ही नहीं हैं, बल्कि पोषण से भी भरपूर हैं।

हमारे देश में हजारों वर्षों से विविध प्रकार की स्थानीय सब्जियां उगाई जाती हैं। इनमें से अनेक का उपयोग औषधीय गुणों के कारण आयुर्वेद में भी किया जाता रहा है जैसे चौलाई, कंटोला, सहजन, परवल, बथुआ, कचनार, कुल्फा एवं पोई साग आदि। इन सब्जियों में भरपूर मात्रा में विटामिन, आयरन, कैल्शियम, फाइबर और एंटीऑक्सीडेंट पाये जाते हैं। ये शरीर को मजबूत बनाने के साथ-साथ प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाते हैं। करेला मधुमेह को नियंत्रित करता है। उदाहरण के तौर पर सहजन को आज पूरी दुनिया में 'सुपरफूड' कहा जाता है, लेकिन भारत में यह हमेशा से आम लोगों के आहार में शामिल रहा है। इसमें दूध से ज्यादा कैल्शियम होता है और यह हड्डियों के लिए बेहद लाभकारी है। चौलाई, आयरन का एक प्रचुर स्रोत है और एनीमिया से बचाने में सहायक है। वहीं कंटोला पाचन को सुधारता है और मधुमेह के नियंत्रण में मददगार है।

तेज जीवनशैली में ताजा देसी विकल्पों की अनदेखी, बाजार में इनकी कम उपलब्धता और जानकारी का अभाव इन सब्जियों की उपेक्षा के मुख्य कारण हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम देसी आहार प्रणाली को अपनाएं। इसके लिए जैविक खेती और देसी आर्गेनिक सब्जियों की खेती को बढ़ावा देना जरूरी है। इससे न केवल किसानों को उचित आमदनी मिल सकती है, बल्कि उपभोक्ताओं को भी शुद्ध और पोषणयुक्त आहार प्राप्त होगा।

इन सब्जियों को आहार में शामिल करना न केवल स्वास्थ्यवर्धक है, बल्कि यह हमारी परंपरा, जैव विविधता और पर्यावरण संरक्षण का भी एक मजबूत कदम है। कम प्रचलित लेकिन बेहद पोषक ये सब्जियां केवल आहार नहीं, बल्कि हमारी संस्कृति और स्वास्थ्य की रक्षा करने वाली अमूल्य धरोहर हैं। ये हमारी परंपरा और कृषि विरासत की भी पहचान हैं। इन स्वदेशी सब्जियों को थाली में स्थान देकर हम स्वास्थ्य, अर्थव्यवस्था और आत्मनिर्भरता तीनों का संतुलन बना सकते हैं। हमें अपने देसी पोषण के खजाने को फिर से अपनाना चाहिए।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

फलों का हिमीकृत परिरक्षण

अजय कुमार त्रिवेदी[1], विवेक कुमार त्रिपाठी[2], स्वतंत्र यादव[3] और **कृपा शंकर यादव[3]**

हमें स्वस्थ रहने के लिए जिन पोषक तत्वों की जरूरत होती है, वे सभी पोषक तत्व फलों में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। इस प्रकार स्वस्थ शरीर के लिए फलों का नियमित सेवन आवश्यक माना जाता है। अधिकांशतः फल मौसमी होते हैं और मौसम बीत जाने के बाद इनका मिलना कठिन होता है। लेकिन हिमीकृत परिरक्षण की विधियों को अपनाकर इन्हें वर्षभर उपलब्ध करवाया जा सकता है। फलों का हिमीकृत परिरक्षण करने के लिए कुछ मूलभूत सिद्धांतों का प्रयोग किया जाता है। इसमें फलों की नमी को कम करके, बाहर के संक्रमण से बचाकर और उसे वायुरोधक बनाकर लंबे समय के लिए परिरक्षित किया जाता है। यदि फलों का सही समय एवं सही तरीके से हिमीकृत परिरक्षण किया जाए तो पोषक तत्वों का ह्रास नहीं होता है। सामान्यतः इस विधि में फलों को -4 डिग्री सेन्टीग्रेड से -40 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान में रखा जाता है।

राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (एन.एच.बी) (2019-20) की रिपोर्ट के अनुसार भारत, विश्व फल उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। वर्ष 2023-24 में देश में फलों का कुल उत्पादन 107662.38 हजार टन था। फलों की वार्षिक उपज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा विभिन्न कारकों के कारण बर्बाद हो जाता है। इसमें मुख्य कारक तुड़ाई के समय फलों में दाग-धब्बे, कट-फट जाना और सही समय पर भंडारण न हो पाना आदि शामिल हैं। यद्यपि धीरे-धीरे लोगों में जागरूकता बढ़ रही है क्योंकि अब मशीनों का उपयोग करके फलों की तुड़ाई, छंटाई, धुलाई, छीलना एवं गूदा निकालना आदि आसान हो गया है। इससे फलों के परिरक्षण में लगातार वृद्धि हो रही है। हिमीकृत परिरक्षण से फलों को ज्यादा समय के लिए रखकर मांग के आधार पर उनका उपयोग करके अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

निर्यात के लिये भारत में उत्पादित होने वाले फलों की मांग लगातार बढ़ रही है। इस मांग को पूरा करने में हिमीकृत परिरक्षण एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यद्यपि फलों की सभी किस्में परिरक्षण के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं, फिर भी हिमशीतित परिरक्षण एवं प्रसंस्करण की सहायता से अधिकांशतः फलों का परिरक्षण किया जा सकता है।

अमेरिकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन (फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन; एफ.डी.ए.) में 25 मार्च 1998 की एक याचिका ने हिमीकृत परिरक्षण एवं प्रसंस्करण उत्पादों पर स्वास्थ्य के प्रति अच्छा होने के दावा संबंधी एक अमेरिकी हिमीकरण खाद्य उद्योग की अर्जी स्वीकार करके यह स्पष्ट किया कि हिमीकृत परिरक्षण द्वारा परिरक्षित फलों का स्वास्थ्य पर कोई नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है।

ताजे फल के पोषक तत्वों व फल के हिमीकृत रूप में पोषक तत्वों की मात्रा को समान पाया गया। कुछ शोधों में यह पाया गया कि कुछ पोषक तत्वों की मात्रा कच्चे अवस्था वाले खाद्य उत्पाद की तुलना में हिमीकृत परिरक्षण एवं प्रसंस्करित खाद्य उत्पाद में अधिक होती है। कुछ फलों में भण्डारण के दौरान पोषक तत्वों और विटामिन की मात्रा में कमी हो जाती है। लेकिन फल को तुड़ाई के तुरंत बाद ही हिमीकृत परिरक्षण एवं प्रसंस्करण से इस तरह की कमी को कम किया जा सकता है। सामान्यतः उपभोक्ताओं में यह भ्रांति रहती है कि हिमीकृत फल स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद नहीं होते हैं या नुकसान कर सकते हैं जबकि कुछ ताजे फल एवं हिमीकृत फलों में पोषक तत्व लगभग सामान होते हैं।

भारत का योगदान

हिमशीतित फलों के परिरक्षण के उद्योग में भारत अभी शुरुआती दौर में है। हिमशीतित परिरक्षण में फलों की भागीदारी में लगातार वृद्धि हो रही है। देश में विभिन्न प्रकार के फलों का उत्पादन हो रहा है, लेकिन सभी फल हिमीकृत परिरक्षण के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। हिमशीतित संसाधित फलों में आम, अमरूद, पपीता और अनन्नास आदि फलों की ताजगी से मूल्य में स्थिरता महत्वपूर्ण कारण है। आई.आई.एच.आर, बेंगलुरु द्वारा आम का हिमशीतित परिरक्षण किया गया, जिसमें दशहरी एवं लंगड़ा किस्मों में उपयुक्त पाई गयी। हिमशीतित परिरक्षण करने से पहले यह जानना जरूरी है कि किस फल व किस्म का हिमशीतित परिरक्षण किया जा सकता है। भारत में अन्य बहुत सारे फलों पर शोध कार्य तेजी से हो रहा है कि कैसे फलों का परिरक्षण किया जाए जिससे कि ज्यादा से ज्यादा फलों को परिरक्षित करके तथा बेमौसमी उपयोग करके मूल्य वृद्धि को कम किया जा सके।

[1]प्रधान वैज्ञानिक एवं [3]शोध छात्र, भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ-226101; [2]प्राध्यापक, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर-208002

हिमीकृत आम के छोटे टुकड़े एवं जूस

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

हिमीकरण के माध्यम से खाद्य परिरक्षण एक अच्छा माध्यम है। फलों का हिमशीतित परिरक्षण ज्यादातर विकसित देशों में किया जाता रहा है। इसके माध्यम से फलों का लम्बे समय तक परिरक्षण किया जाता है। इस क्षेत्र में विदेशों में बहुत तेजी के साथ विकास हुआ है। विभिन्न प्रकार के हिमशीतित खाद्य उत्पादों में अरबों डॉलर का व्यापार हो रहा है। हिमशीतित खाद्य फलों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है, फलों के परिरक्षण में इस विधि का उपयोग विभिन्न विकसित देशों (जैसे कि यू.एस.ए., यू.के., फ्रांस, जर्मनी, नीदरलैण्ड आदि) में तेजी से बढ़ रहा है।

फलों के परिरक्षण का सिद्धांत

फलों के परिरक्षण में मूलतः दो सिद्धांतों का उपयोग किया जाता है:- क) अस्थाई परिरक्षण, ख) स्थाई परिरक्षण

क) अस्थाई परिरक्षण

इस विधि से फलों को अल्पकाल के लिए ही परिरक्षित किया जा सकता है। जैसे कि:

सफाई द्वारा: इसमें फलों की तुड़ाई के बाद सड़े-गले एवं चोटिल फलों को छांटकर बेदाग फलों को टोकरियों में परिरक्षण के लिए रखा जाता है। फल के अनुसार उचित तापमान वाले स्थान पर इन्हें रख दिया जाता है।

कम तापमान द्वारा: कम तापमान में फलों को रखने पर बैक्टीरिया शिथिल हो जाते हैं और अपना विकास एवं गुणन नहीं कर पाते हैं। अतः कम तापमान वाले स्थान पर फलों को ज्यादा समय के लिए परिरक्षित किया जा सकता है।

अधिक तापमान द्वारा: उच्च तापमान पर फलों को रखने से बैक्टीरिया की क्रियाशीलता धीमी हो जाती है। इस विधि में कम खट्टे फलों को ही परिरक्षित किया जाता है। अधिक खट्टे फलों को परिरक्षण के लिए स्थाई विधि में रखा जाता है।

नमी को कम रखकर: फलों में नमी की मात्रा कम करके, ठंडे एवं शुष्क स्थान में रखने पर जीवाणुओं का प्रभाव कम हो जाता है। इसे लंबे समय तक डिब्बे में बंदकर परिरक्षण के लिए रखा जा सकता है।

ख) स्थाई परिरक्षण

फलों को सुखाकर स्थाई परिरक्षण किया जा सकता है। ज्यादा नमी होने से फलों में बैक्टीरिया का विकास तेजी से होता है इसलिए इन्हें सुखाकर परिरक्षण के लिए रखते हैं। सामान्यतः फलों को धूप एवं मशीनों के माध्यम से सुखाते हैं। किशमिश और अंजीर इस विधि से परिरक्षण किये जाने वाले फलों का अच्छा उदाहरण हैं। फलों में लगभग 20 से 25 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं रखनी चाहिए।

नमक द्वारा परिरक्षण: इस विधि में नमक का उपयोग करने से बैक्टीरिया की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है। इस विधि में खाद्य उत्पादों में नमक मिलाकर (15% तक) स्थाई परिरक्षण किया जा सकता है। इसका प्रयोग करके अचार आदि को लंबे समय के लिए परिरक्षित किया जा सकता है।

चीनी द्वारा परिरक्षण: इस विधि में लगभग 66% चीनी का उपयोग करके बैक्टीरिया की क्रियाशीलता को रोककर लंबे समय के लिए फल परिरक्षित करते हैं।

रासायनिक पदार्थ द्वारा परिरक्षण: फलों के परिरक्षण के दौरान रासायनिक पदार्थ का सीमित मात्रा में प्रयोग करके भी फलों को परिरक्षण के लिए रखा जाता है। रासायनिक पदार्थ का प्रयोग ज्यादा मात्रा में नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

सोडियम बेंजोएट द्वारा परिरक्षण: इस परिरक्षक को पानी में घोलने के बाद बेंजोइक अम्ल बनता है। यह बैक्टीरिया की क्रियाशीलता को रोक देता है। इससे फलों का ज्यादा लंबे समय तक परिरक्षण किया जाता है।

सोडियम मेटाबाइसल्फेट एवं पोटेशियम मेटाबाइसल्फेट द्वारा परिरक्षण: ये पानी में घुलने के बाद सल्फर डाइऑक्साइड गैस बनाते हैं। यह गैस बैक्टीरिया को प्रभावित करती है। इस उपचार के बाद फलों को लंबे समय तक परिरक्षण के लिए रखा जा सकता है।

एसिटिक अम्ल द्वारा परिरक्षण: इसका प्रयोग फलों के स्थाई परिरक्षण के लिए करते हैं। खाद्य उत्पादों में 2 प्रतिशत एसिटिक अम्ल मिलाकर रखने से इन्हें खराब होने से बचाया जा सकता है।

किण्वन द्वारा परिरक्षण: इस विधि में बैक्टीरिया और एंजाइम का प्रयोग करके उपस्थित कार्बोहाइड्रेट का किण्वन किया जाता है। इसकी सहायता से खाद्य उत्पाद स्थाई रूप से परिरक्षण के लिए तैयार हो जाते हैं। उदाहरण के लिए लैक्टिक फर्मेंटेशन, अल्कोहलिक फर्मेंटेशन, एसिटिक फर्मेंटेशन आदि का भी प्रयोग किया जा रहा है।

फलों के हिमीकृत परिरक्षण के उदाहरण

सभी फल एवं किस्में परिरक्षण के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। आम की किस्मों मे दशहरी, लंगड़ा तथा बेनिशन आदि किस्मों का चयन करके फलों के गूदे या छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर हिमीकृत परिरक्षण के लिए रखा जा सकता है। नीबू वर्गीय फलों में फल के रस को निकालकर उसे डिब्बे में रखकर

हिमीकृत जामुन का फल एवं जूस

हिमीकृत परिरक्षण के लिए रखा जा सकता है। अंगूर में फल को साफ करके छोटे-छोटे टुकड़े कर परिरक्षण के लिए रखा जाता है। ऐसे ही अन्य फलों जैसे सेब, आड़ू आदि के गूदे और फलों के छोटे-छोटे टुकड़ों एवं जूस का परिरक्षण किया जाता है।

फलों के परिरक्षण के लिए फसल चयन एवं किस्म के चयन का विशेष ध्यान रखना चाहिए। देखा गया है कि कुछ किस्मों का परिरक्षण काफी अच्छा होता है,जबकि कुछ किस्में जल्दी खराब हो जाती हैं। अतः इन्हें ज्यादा दिनों तक परिरक्षित नहीं किया जा सकता।

आमः यह फल गर्मियों के समय भरपूर मात्रा में बाजार में उपलब्ध रहता है। इसकी दशहरी, लंगड़ा आदि किस्मों का लंबे समय के लिए परिरक्षण किया जा सकता है। फलों का चयन करते समय पके हुए फलों को तोड़कर, उनकी धुलाई करने के बाद गूदे को निकालकर या छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर या जूस बनाकर परिरक्षण के लिए रख दिया जाता है।

आंवलाः यह फल बहुत गुणकारी होता है। इसकी मांग वर्षभर बनी रहती है। ऐसे में जब किसानों के पास पर्याप्त मात्रा में फल उपलब्ध हों तो उस समय अच्छे परिपक्व फल तोड़कर अच्छी तरह से साफ करके छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर या उनका रस बनाकर परिरक्षण के लिए रख दिया जाता है। इससे जब फल उपलब्ध न हों तब परिरक्षित फलों एवं रस की आपूर्ति की जा सकती है।

जामुनः इस फल का विशेष औषधीय महत्व है। इसका उपयोग मधुमेह के मरीजों के लिए बहुत लाभकारी माना जाता है, साथ ही पेट सम्बन्धी विकारों में यह उपयोगी है। जामुन के परिरक्षण के लिए अच्छे पके हुए फलों को तोड़कर उनकी धुलाई एवं सफाई करके जूस बनाकर डिब्बे में बंदकर परिरक्षण के लिए रख दिया जाता है।

लीचीः इसके पके हुए फलों को तोड़कर धुलाई, सफाई करके पूरा फल या जूस बनाकर डिब्बे में बंदकर परिरक्षण के लिए रख दिया जाता है।

हिमीकृत परिरक्षण की विधियां

(क) धीमा हिमीकरण विधिः इसमें परिरक्षण के लिए कक्ष का तापमान -4 डिग्री सेन्टीग्रेड से -29 डिग्री सेन्टीग्रेड के बीच रखा जाता है। इस विधि में हिमीकरण के लिए 3 घंटे से 72 घंटे तक समय लग सकता है। इस विधि से हिमीकरण बहुत धीरे-धीरे होता है।

(ख) तत्काल हिमीकरण विधिः इस विधि में फलों को -32 डिग्री सेन्टीग्रेड से -40 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर हिमीकरण के लिए रखा जाता है। इससे हिमीकरण बहुत तेजी से होता है। इस विधि से हिमीकरण करने में समय बहुत कम लगता है। तत्काल हिमीकरण द्वारा कम समय में ज्यादा फलों को हिमशीतित किया जा सकता है।

तत्काल हिमीकृत परिरक्षण के चरणः हिमीकरण करने से पहले फलों को तोड़ने के बाद उन्हें ठीक तरह से साफ करके फल का गूदा, जूस (छानकर) या फलों के टुकड़े करके हिमीकरण द्वारा परिरक्षण किया जाता है, इस विधि में निम्न चरण होते हैं:

- हिमीकरण के लिए उपयुक्त फलों का चयन, जैसे कि कीट एवं रोग रहित, अच्छे गूदेदार फल
- तुड़ाई के बाद फलों की सफाई
- फलों की छंटाई
- छोटे-छोटे टुकड़े या क्यूब्स और डाइसिंग
- हिमीकरण पूर्व उपचार - छीलना, ब्लैंचिंग, ठंडा करना।

(ग) डिहाइड्रो हिमीकरणः इस विधि का उपयोग काफी लंबे समय से किया जा रहा है। इस विधि में फलों की तुड़ाई, सफाई करने के बाद धूप मे सुखाकर नमी की मात्रा को कम करके परिरक्षण के लिए तैयार किया जाता है। मशीनों का प्रयोग करके भी निश्चित

हिमीकृत लीची

नीबू

नीबू वर्गीय फलों में पके हुए फलों को तुड़ाई के बाद धुलाई करके अच्छे फलों की छंटाई करते हुए इन्हें छोटे-छोटे भागों में काटकर रस निकाल लिया जाता है। रस को छानकर वायुरोधी डब्बे में बंदकर परिरक्षण के लिए रख दिया जाता है। जब किसानों के पास फल उपलब्ध न हों तो परिरक्षण किए हुए फलों एवं रस का उपयोग किया जा सकता है।

हिमीकृत नीबू जूस

मात्रा मे फलों का निर्जलीकरण करके परिरक्षण के लिए रखा जाता है।

हिमीकृत परिरक्षण एवं प्रसंस्करण उद्योग का महत्व: खाद्य उद्योग में हिमीकृत फलों का विशेष महत्व है। इस महत्व को देखते हुए देश-विदेश में इससे सम्बंधित छोटे एवं बड़े उद्योगों का उदय हुआ। फलों में पाए जाने वाले विटामिन, एंजाइम, खनिज व आसानी से पचने वाली शर्करा आदि फलों के गूदे मे भरपूर मात्रा में पाये जाने से बाजार में फलों के परिरक्षण की माँग लगातार बढ़ रही है। शोधों से पता चला है कि परिरक्षण करने से फलों में पाए जाने वाले पोषक तत्वों में कमी नहीं होती, जिससे परिरक्षित फलों के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ रहा है।

हिमीकृत अमरूद का गूदा

फलों के परिरक्षण से लाभ

- जिन स्थानों पर फलों को नहीं उगाया जा सकता, वहां पर भी परिरक्षण किये हुए फल आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं।
- फलों का परिरक्षण करने से उन मौसमों में भी फल खाने के लिए उपलब्ध रहते हैं, जिस मौसम में उनकी प्राकृतिक पैदावार नहीं होती है।
- जब बाजार में फलों की अधिकता होती है उस समय किसानों को फल बेचने से अच्छा लाभ (मुनाफा) नहीं मिलता। अतः फलों का परिरक्षण करके किसान बेमौसमी फलों से अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।
- फलों का परिरक्षण करने से रोजगार सृजन होता है।
- फलों का परिरक्षण करने से वर्षभर फलों का स्वाद एवं पोषक तत्व मिलते रहते हैं।
- फलों के परिरक्षित करके आसानी से विदेशों तक भेजा जा सकता है।

चुनौतियां

- लोगों में यह भावना बन गई है कि परिरक्षण की हुई खाद्य सामग्री एवं फल, ताजे फलों से निम्न कोटि के होते हैं, लेकिन यह एक भ्रम है। अगर हिमशीतित खाद्य फलों को सही तरीके से रखा जाये तो ये ताजे फलों के समतुल्य ही होते हैं। ताजे फल बाजार तक सही समय से नहीं पहुच पाते हैं, अतः परिरक्षण एक उपयुक्त विकल्प है।
- हिमशीतित परिरक्षण के लिये बिजली की खपत अधिक होती है जैसे ब्लैंचिंग, ठंडा करना, डिब्बाबंदी आदि क्रियाएं बिना बिजली के संभव नहीं है। बिजली आपूर्ति में बाधा इस क्षेत्र के विकास में एक अवरोध है। विगत वर्षों में बिजली की आपूर्ति लगातार बढ़ रही है। अतः आने वाले समय में यह एक समस्या नहीं रहेगी।
- ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के अभाव के कारण फल परिरक्षण एवं प्रसंस्करण प्रभावित होता है। सही सड़क नेटवर्क न होने के कारण परिरक्षित फल सही समय एवं स्थान पर नहीं पहुँच पाते हैं और इसका प्रभाव परिरक्षण उद्योग पर पड़ता है। वर्तमान में सड़कों का विकास द्रुत गति से होने के कारण परिरक्षित फलों के सुदूर देसी बाजारों में पहुंचने एवं निर्यात की अपार संभावनाए हैं।
- देश के कई क्षेत्रों में शीत भंडारगृह की सुविधा न होने के कारण परिरक्षित फलों के भंडारण की समस्या होती है। इस कारण से भी फलों एवं खाद्य उत्पादों का परिरक्षण नहीं हो पा रहा है। यदि शीत भंडारगृह आसानी से उपलब्ध रहें तो ज्यादा मात्रा में परिरक्षित फलों का उपयोग एवं निर्यात किया जा सकता है।

उद्यान विज्ञान में शोधों के माध्यम से फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है। लेकिन उत्पाद को सुरक्षित उपभोक्ता तक पहुँचाना अभी भी एक चुनौती है। उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुंचाने के लिए उचित परिरक्षण अति आवश्यक है। हिमीकरण द्वारा फलों के परिरक्षण की अपार संभावनाएं हैं। अतः परिरक्षण की जानकारी के प्रसार एवं इससे सम्बंधित विभिन्न विधियों के प्रशिक्षण द्वारा न केवल उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाया जा सकता है बल्कि इसके माध्यम से रोजगार सृजन भी होगा।

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' सितम्बर, 2025 अंक के प्रमुख आकर्षण

- पत्तों और कृषि अपशिष्ट से बने जैव-अपघटनीय बर्तन
- अरुणाचल प्रदेश में कुट्टू की लाभकारी खेती
- कुक्कुट पालन से आर्थिक सशक्तिकरण
- पर्यावरण अनुकूल प्राकृतिक खेती
- कपास में गुलाबी सुंडी का प्रबंधन
- ताप तनाव में देसी पशुधन की अनुकूलनशीलता
- कीट प्रबंधन हेतु सौर आधारित एलईडी प्रकाश जाल
- श्रीअन्न फसलों में समेकित रोग प्रबंधन
- फसल उत्पादन में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका
- शरबती गेहूं का भरपूर उत्पादन

संपर्क सूत्रः प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाषः 25843657, www.icar.org.in

हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली से स्ट्रॉबेरी का उत्पादन

जरापला प्रशांत, अक्षय तिवारी, दीपिका यादव, योगेश राजवाड़े और **केवीआर राव**

हाइड्रोपोनिक्स एक नवीनीकृत और एकीकृत कृषि प्रणाली है। इसमें मृदारहित माध्यम में खेती की जाती है एवं पौधों की जड़ों को सीधे पानी और पोषक तत्व प्रदान किये जाते हैं। यह तकनीक संसाधनों की बचत के साथ-साथ फसल उत्पादन का एक प्रभावी तरीका प्रस्तुत करती है। इस अध्ययन में स्ट्रॉबेरी की खेती एक साधारण ए-टाइप की विक आधारित हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली के माध्यम से की गई है, जिसमें कोकोपीट, परलाइट और वर्मीकम्पोस्ट को माध्यम के रूप में प्रयोग किया गया है। स्ट्रॉबेरी के उन्नत उत्पादन के लिए तापमान 15-30 डिग्री सेल्सियस, आर्द्रता 60-70%, पीएच मान 5.8-6.5, और विद्युत चालकता 1.0-2.2 मिलीसीमेंस प्रति सेंटीमीटर रखी गयी। इससे प्रत्येक पौधे से 15-20 फल प्राप्त हुए, जिनका औसत वजन 6-20 ग्राम रहा और कुल उत्पादन 200-400 ग्राम प्रति पौधा रहा। सम्पूर्ण फसल अवधि के दौरान प्रति पौधा कुल 25-35 लीटर पानी की खपत हुई, जिसमें प्रतिदिन की आवश्यकता 200-300 मिलीलीटर रही। इससे जल उपयोग दक्षता 8.5-16 ग्राम/लीटर और जल उत्पादकता 0.20-0.40 किलोग्राम प्रति घनमीटर रही। ये निष्कर्ष दर्शाते हैं कि विक आधारित हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली एक संसाधन कुशल और एकीकृत कृषि तकनीक है। यह छोटे स्तर पर और शहरी क्षेत्रों में स्ट्रॉबेरी की खेती के लिए उपयुक्त विकल्प है।

वर्तमान में परंपरागत खेती प्रणाली को अनिश्चित मौसम, मिट्टी की उर्वरता में कमी, श्रमिकों की कमी और जल की सीमित उपलब्धता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए हाइड्रोपोनिक्स, एरोपोनिक्स और एक्वापोनिक्स जैसी आधुनिक खेती की तकनीकों की ओर रुझान बढ़ रहा है। इन तकनीकों में से हाइड्रोपोनिक्स को एक बेहतर विकल्प के रूप में देखा जा रहा है। इसमें मृदारहित माध्यम में पौधे उगाए जा सकते हैं और 90% तक कम पानी का उपयोग होता है। इसके कारण वर्षभर खेती करना संभव हो पाया है। साथ ही पोषक तत्वों का बेहतर प्रबंधन और सीमित स्थान में अधिक उत्पादन भी इसका एक मुख्य लाभ है - जो शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के लिए आदर्श है।

भारत में स्ट्रॉबेरी की खेती मुख्यत: समशीतोष्ण एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों जैसे हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्सों में की जाती है। इसकी उच्च पोषण क्षमता और बढ़ती मांग के कारण वैश्विक स्तर पर स्ट्रॉबेरी उत्पादन लगातार बढ़ रहा है। इसके बावजूद भारत में इसका वार्षिक उत्पादन वर्ष 2020-2021 के लिए केवल 19,840 मीट्रिक टन है। इसकी खेती का क्षेत्रफल 3,031 हैक्टर है। देश में अब भी परंपरागत मृदा आधारित और स्टोलन विधि से खेती की जाती है। लेकिन मृदाजनित रोगों और कम ताजगी अवधि जैसी समस्याओं के कारण वृहद स्तर पर इसके विस्तार में कठिनाई आ रही है। ऐसे में हाइड्रोपोनिक्स एक व्यावहारिक विकल्प प्रस्तुत करती हैं, जो न केवल उत्पादन बढ़ाती है, बल्कि मृदाजनित रोगों के प्रकोप को कम करती है एवं फलों की गुणवत्ता में निरंतरता सुनिश्चित करती है।

विंटर डॉन, चैंडलर, टियोगा, टॉरे, सेल्वा, बेलरूबी, फर्न, पाजारो, कैमरॉसा और

भाकृअनुप-केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल

एल्बियन किस्में प्रमुख हैं। इनमें विंटर डॉन किस्म भारतीय परिस्थितियों में हाइड्रोपोनिक्स के तहत विशेष रूप से टिशू कल्चर द्वारा उगाए जाने पर अच्छा प्रदर्शन करती है।

रोपाई का उपयुक्त समय और माध्यम का चयन: सामान्य परिस्थितियों में स्ट्रॉबेरी की रोपाई का सर्वोत्तम समय अक्टूबर से दिसंबर तक होता है। इससे स्ट्रॉबेरी का उत्पादन जनवरी-फरवरी माह तक ले सकते हैं। लेकिन हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली में पर्यावरण (तापमान, आर्द्रता आदि) को नियंत्रित कर स्ट्रॉबेरी का उत्पादन और भी अधिक समय तक संभव होता है।

मृदा के स्थान पर उपयोग होने वाला माध्यम: कोकोपीट, वर्मीक्यूलाइट और परलाइट का मिश्रण (3:1:1 अनुपात में), यह संयोजन जड़ों के बेहतर विकास और नमी बनाए रखने में मदद करता है।

जल और पोषक तत्व प्रबंधन: हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली में जल और पोषक तत्वों का प्रबंधन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पौधों को जल आधारित घोल के माध्यम से कुल 16 आवश्यक पोषक तत्व प्रदान किए जाते हैं। हाइड्रोपोनिक स्ट्रॉबेरी के लिए विभिन्न पोषक तत्व मिश्रण संयोजन उपयोग में लाए जाते हैं, जैसे: यामाजाकी फॉर्मूला, हॉगलैंड फॉर्मूला और सबसे प्रचलित डॉ. एलन कूपर का फॉर्मूला जिसे स्ट्रॉबेरी के लिए मानक के रूप में अपनाया गया है। पोषक घोल को दो भागों (भाग-ए में कैल्शियम, नाइट्रेट, पोटेशियम नाइट्रेट आयरन और भाग-बी अन्य पोषक तत्व) में तैयार किया जाता है ताकि रासायनिक प्रतिक्रियाओं से बचा जा सके। इलेक्ट्रॉनिक टाइमर की सहायता से पोषक घोल को 20-30 सेकेंड के लिए चालू और 30-40 मिनट के लिए बंद रखने का चक्र 24 घंटे चलता रहता है। इससे जड़ों के पास नमी का संतुलन बना रहता है। हर सप्ताह में पोषक जल का निरीक्षण करना चाहिए ताकि उसमें लवण जमा न हों और पीएच मान का संतुलन बना रहे।

सीमित स्थान में भरपूर उत्पादन

फूल, फल और कीट प्रबंधन: रोपाई के 2-4 सप्ताह बाद स्ट्रॉबेरी के पौधों में फूल आना शुरू हो जाते हैं। इस समय पोटेशियम और फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ाई जाती है ताकि फल की गुणवत्ता में सुधार हो। परागण को बेहतर बनाने के लिए हाथ से या ब्लोअर की मदद से परागकण को फैलाया जाता है। इससे फलन अच्छी तरह से होता है। समय-समय पर छंटाई करने से भी फलों की गुणवत्ता में सुधार होता है। फरवरी के अंत में तापमान बढ़ने पर स्पाइडर माइट्स जैसे कीटों का प्रकोप हो सकता है, जिसे शुरुआती अवस्था में ही नीम के तेल के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

उपज और उत्पादकता: हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली में उगाई गई स्ट्रॉबेरी रोपाई के 60 से 90 दिनों के भीतर तोड़ने के लिए तैयार हो जाती है। फलों को उस समय तोड़ना चाहिए जब वे पूरी तरह लाल और सख्त हो जाएं। सुबह के समय तुड़ाई करना सबसे उपयुक्त होता है। सामान्यत: हर 5 से 7 दिनों के अंतराल पर तुड़ाई की जाती है। प्रत्येक पौधे से एक सीजन में 15-20 फल प्राप्त हो सकते हैं। इनका औसत वजन 6-20 ग्राम और कुल उत्पादन 200-400 ग्राम हो सकता है। जबकि हाइड्रोपोनिक्स विधि से लगाई गई स्ट्रॉबेरी में फल का औसत वजन 10-30 ग्राम होता है और प्रति पौधा एक सीजन में 500-600 ग्राम तक उत्पादन प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार सामान क्षेत्रफल में हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली से 1.5-2 गुना तक अधिक उत्पादन प्राप्त हो सकता है।

हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली में प्रतिदिन पानी की आवश्यकता प्रति पौधा लगभग 200-300 मिलीलीटर और पूरे सीजन में कुल पानी की खपत 25-35 लीटर प्रति पौधा होती है। अध्ययन में जल उपयोग दक्षता लगभग 8.5-16 ग्राम प्रति लीटर और जल उत्पादकता लगभग 0.20-0.4 किलोग्राम प्रति 25–35 लीटर पानी की मात्रा दर्ज की गई है। इन आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि हाइड्रोपोनिक्स स्ट्रॉबेरी उत्पादन के लिए एक टिकाऊ समाधान है। यह कम आदानों में अधिक उत्पादन देकर परंपरागत मृदा आधारित खेती की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी सिद्ध होता है।

इस प्रकार हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली न केवल उत्पादकता को बढ़ाती है, वरन प्राकृतिक संसाधनों की भी बचत करती है।

हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली में स्ट्रॉबेरी की खेती

हाइड्रोपोनिक्स पद्धति से स्ट्रॉबेरी की खेती तेजी से लोकप्रिय हो रही है। यह तकनीक कम जगह में, कम संसाधनों के साथ खेती को संभव बनाती है। हाइड्रोपोनिक्स खेती के लिए उपयोग होने वाली प्रचलित संरचनाओं में प्रमुख रूप से ।-टाइप फ्रेम, वर्टिकल टॉवर और वॉल-टाइप फ्रेम शामिल हैं। इनमें ए-टाइप प्रणाली एक त्रिकोणीय ढांचे पर आधारित होती है, इसमें दोनों ओर पौधों तक आसानी से पहुंचा जा सकता है। सामान्य विधि में प्रति वर्ग मीटर 8-12 पौधे लगते हैं जबकि हाइड्रोपोनिक्स पद्धति में प्रति वर्ग मीटर में 50-60 पौधे लगा सकते हैं। यह सामान्य विधि की तुलना में लगभग 5 गुना अधिक है। यह प्रणाली मध्यम स्तर की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। शुरुआती लोगों के लिए ए-टाइप विक आधारित हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली एक बेहद सरल और किफायती विकल्प है। इस प्रणाली में विक के माध्यम से पोषक घोल को पौधों की जड़ों तक पहुँचाया जाता है जो कैपिलरी क्रिया पर कार्य करती है। पौधे कोकोपीट आधारित माध्यम से भरे खानों में लगाए जाते हैं। यह छोटे स्तर के किसानों या घरेलू उत्पादकों के लिए उपयुक्त है। हालांकि, यह प्रणाली अधिक जल की आवश्यकता वाली फसलों के लिए उतनी प्रभावी नहीं होती। स्ट्रॉबेरी, हाइड्रोपोनिक्स पद्धति के लिए एक बहुत ही उपयुक्त फसल है। क्योंकि इसकी सीमित वृद्धि, उच्च बाजार मांग और परंपरागत खेती में मृदाजनित रोगों की संवेदनशीलता इसे हाइड्रोपोनिक्स खेती के लिए आदर्श बनाते हैं। हाइड्रोपोनिक्स प्रणाली इन समस्याओं को समाप्त करती है क्योंकि इसमें पौधों को एक नियंत्रित, मृदारहित वातावरण में आवश्यक पोषक तत्व सीधे दिए जाते हैं। इससे उपज और फलों की गुणवत्ता दोनों में वृद्धि होती है।

विदेशी सब्जियों का बढ़ता महत्व

सीमा ठाकुर[1], **इशांत दत्ता**[2], **अनुज कटोच**[2] और **राजेश ठाकुर**[1]

भारत में सब्जियों की विविधता अद्वितीय है। परंतु दुनियाभर में कई ऐसी विलक्षण सब्जियाँ भी हैं जो अपने अनूठे स्वाद, रंग और पोषक तत्वों के कारण विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं। आजकल भारतीय व्यंजनों में विदेशी सब्जियां काफी प्रचलन में आ रही हैं। वास्तव में ये सब्जियां न सिर्फ खाने में स्वादिष्ट होती हैं, बल्कि बहुत से आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर भी होती हैं। इन सब्जियों की उत्पत्ति दुनिया के विभिन्न कोनों में होती है। इनमें सेलेरी, ब्रोकोली, लीक और पार्सले जैसी अनेक अद्वितीय सब्जियाँ शामिल हैं। इन सब्जियों का स्वाद, बनावट और पोषक तत्व अन्य सामान्य सब्जियों से भिन्न होते हैं, जो उन्हें विशेष बनाते हैं। प्राचीन काल से मनुष्य अपने आहार में विभिन्न प्रकार के पौधों को शामिल करता आया है। समय के साथ, व्यापार और यात्राओं के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों ने एक-दूसरे के खाद्य उत्पादों का आदान-प्रदान किया। इसी प्रकार, कई दुर्लभ विदेशी सब्जियाँ दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पहुँच गईं।

विदेशी सब्जियाँ हमारे आहार में न केवल नए और रोचक तत्व जोड़ती हैं, बल्कि पोषण की दृष्टि से भी बहुत लाभदायक होती हैं। इनका सेवन हमें स्वस्थ रखने में मदद करता है और हमारे आहार को स्वादिष्ट और विविध बनाता है। इन सब्जियों को आहार में शामिल कर स्वास्थ्य को बेहतर बना सकते हैं और एक समृद्ध और संतुलित जीवनशैली को अपना सकते हैं। इस प्रकार ये विलक्षण सब्जियाँ हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इस प्रकार इनके महत्व को समझना और उन्हें अपने दैनिक आहार में शामिल करना आवश्यक है।

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, सोलन, हिमाचल प्रदेश; [2]छात्र, डॉक्टरेट, सब्जी विज्ञान, डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन

विदेशी सब्जियों का महत्व

पोषणः विदेशी सब्जियाँ अक्सर पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। इनमें कई प्रकार के विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट और फाइटोकेमिकल्स होते हैं। ये स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभकारी होते हैं और विभिन्न रोगों से बचाव में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए, पर्पल कैरट में उच्च मात्रा में एंथोसाइनिन होता है, जो हृदय के स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।

स्वाद और बनावटः ये सब्जियाँ अपने अनूठे स्वाद और बनावट के कारण आहार में नया और रोचक तत्व जोड़ती हैं। इन सब्जियों को खाने से न केवल नए स्वाद का अनुभव मिलता है, बल्कि आहार के प्रति रुचि भी बढ़ती है।

पारिस्थितिक और आर्थिक महत्वः इन सब्जियों का उत्पादन अक्सर पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण होता है। ये स्थानीय जलवायु और मृदा की विशेषताओं के अनुकूल होती हैं। इनका उपयोग जैव विविधता को बनाए रखने में सहायक होता है और कृषि के सतत विकास में योगदान देता है। इसके अलावा, इन सब्जियों का उत्पादन और बिक्री स्थानीय किसानों और अर्थव्यवस्था के लिए भी लाभकारी है।

आधुनिक युग में भूमिकाः आज, खाद्य उद्योग और खाद्य वैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोधों के कारण हमें नई-नई सब्जियों का पता चल रहा है। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता और विविध आहार की खोज के कारण ये विलक्षण सब्जियाँ लोकप्रिय हो रही हैं। शहरीकरण और वैश्वीकरण के कारण लोग अब विभिन्न देशों की सब्जियाँ अपने स्थानीय बाजारों में प्राप्त कर सकते हैं। इनका उपयोग और उत्पादन हमें एक समृद्ध और संतुलित जीवनशैली की ओर अग्रसर करता है।

मुख्य विदेशी सब्जियां

ब्रोकोली: यह ठंडे मौसम की सब्जी है। इसे आमतौर पर सितंबर से नवंबर के बीच उगाया जाता है। इसके कोमल हरे फूलों के डंठल को कच्चा खाया जा सकता है। ब्रोकोली, गोभी की ही एक प्रजाति है, लेकिन इसके फूल हरे रंग के होते हैं। ब्रोकोली के

ब्रोकोली

पौधे की पत्तियां भी खाने योग्य होती हैं। यह कई सारे विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती हैं, जो आहार में स्वाद और स्वास्थ्य लाभ प्रदान करती हैं। यह फसल ठंडे मौसम, 18°C से 23°C तापमान के बीच और मध्यम धूप में अच्छी वृद्धि करती है।

लेट्यूस: इसे हिंदी में सलाद पत्ता भी कहा जाता है। यह एक लोकप्रिय और पौष्टिक सब्जी है जिसे आमतौर पर सलाद में इस्तेमाल किया जाता है। यह एक हराभरा और कुरकुरा पत्ता है जो न केवल स्वाद में बेहतरीन होता है बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी बेहद लाभकारी होता है। लेट्यूस में विटामिन ए, विटामिन सी और विटामिन के, फोलेट और आयरन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। लेट्यूस में कैलोरी की मात्रा बहुत कम होती है। लेट्यूस की अच्छी पैदावार के लिए ठंडी और नम जलवायु की आवश्यकता होती है। अत्यधिक गर्मी या पाला इसकी वृद्धि को प्रभावित कर सकते हैं। लेट्यूस की उत्पादन तकनीक को सही तरीके से अपनाने पर न केवल उच्च गुणवत्ता वाली फसल प्राप्त होती है, बल्कि यह बाजार में अच्छी कीमत भी दिलवाती है।

लेट्यूस

ब्रुसेल्स स्प्राउट्स

ब्रुसेल्स स्प्राउट्स विदेशी सब्जियों में से एक है। इसका अनूठा स्वाद और स्वास्थ्य लाभों की वजह से इसे भारत में अधिकांशत: उपयोग किया जाता है। ये दिखने में पत्ता गोभी के सामान होते हैं, लेकिन इनका आकार बेहद छोटा होता है। इसमें विटामिन सी, खनिज, एंटीऑक्सीडेंट और बीटा कैरोटीन जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्व भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। अच्छी फसल के लिए गोबर की खाद 20 टन, कैन 500 कि.ग्रा., सुपर फॉस्फेट 250 कि.ग्रा., म्यूरेट ऑफ पोटाश 65 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर खेत तैयार करते समय मिट्टी में मिलानी चाहिए। एक हैक्टर भूमि के लिए 400-500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

सेलेरी: यह अपने कुरकुरे डंठल, उत्तम स्वाद और लाभकारी हर्बल गुणों के कारण उपयोग की जाने वाली एक विदेशी सब्जी है। यह विदेशी सब्जी ठंडे तापमान और समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त है तथा इसे उगाने के लिए अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी और नियमित पानी की आवश्यकता होती है। अच्छी फसल के लिए 10 टन गोबर की

सेलेरी

खाद, 400 कि.ग्रा. कैन, 300 कि. ग्रा. सुपर फॉस्फेट प्रति हैक्टर आवश्यक होती है। सेलेरी की प्रचलित किस्में गोल्डन सैल्फ ब्लैंचिंग तथा ऊटाह 5270 हैं और 100 ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की मात्रा पर्याप्त है। गर्मियों में 14 सप्ताह तथा सर्दियों में 26 सप्ताह में फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है।

पार्सले: यह सब्जी अधिकतर ताजगी भरे स्वाद और सुगन्ध के लिए प्रयोग की जाती है। यह विश्वभर के विभिन्न व्यंजनों में अपनी खास पहचान रखती है। पार्सले विटामिन ए, विटामिन सी और विटामिन के, आयरन एवं कैल्शियम का उत्कृष्ट स्रोत है। पार्सले में एंटीऑक्सीडेंट्स भी होते हैं जो शरीर को फ्री रैडिकल्स से बचाते हैं। अच्छी फसल के लिए गोबर की खाद 15 टन, कैन 240 कि. ग्रा., सुपर फॉस्फेट 240 कि.ग्रा. तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश 45 कि.ग्रा. मात्रा प्रति हैक्टर डालनी चाहिए। उचित भूमि चयन, समय पर बुआई, नियमित सिंचाई और देखभाल, तथा रोग और कीट नियंत्रण जैसी प्रक्रियाओं का ध्यान रखकर किसान इसकी लाभकारी खेती कर सकते हैं।

लीक: इस सब्जी ने अपने हल्के प्याज जैसे स्वाद के साथ, भारतीय सब्जियों में एक खास जगह बना ली है। इसका पौधा दिखने में प्याज जैसा होता है लेकिन, स्वाद में थोड़ा मीठा लगता है। लीक के लम्बे, मोटे, सफेद डंठल होते हैं। इसका सफेद भाग

लीक

खाना पकाने और खाने के लिए सबसे अधिक पसंद किया जाता है। लीक न केवल खाने को स्वादिष्ट बनाती है बल्कि, इसमें मैंग्नीज, आयरन, फोलेट, विटामिन के, विटामिन बी-6, विटामिन सी जैसे पौष्टिक तत्व अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

थ्री-जी कटिंग द्वारा लत्तरदार सब्जी उत्पादन में वृद्धि

अल्पना कुमारी, शशांक शेखर सोलंकी, अनुपम आदर्श और **रणधीर कुमार**

3जी (तीसरी पीढ़ी) कटिंग लत्तरदार सब्जियों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने की एक नई तकनीक है। इसका उपयोग पौधों की विभिन्न प्रजातियों में उपज सुधार के लिए किया जाता है। इस तकनीक में नर-मादा पुष्प अनुपात को बदलने के लिए पहली (1जी) और दूसरी पीढ़ी (2जी) की शाखाओं की छंटाई शामिल है। नर फूलों का उपयोग मादा फूलों के परागण के लिए किया जाता है, जो कई मादा पुष्पों को परागित करते हैं। अधिक नर फूलों की उपस्थिति आवश्यक रूप से फायदेमंद नहीं होती, क्योंकि वे फलों का उत्पादन नहीं करते एवं केवल परागणकर्ता होते हैं। ये कई मादा पुष्पों को परागित करते हैं। इस प्रकार 3जी तकनीक द्वारा पौधों पर मादा फूलों के अनुपात को बढ़ाकर पौधों पर गुणवत्तायुक्त फलों की संख्या को बढ़ाने के अधिक अवसर प्रदान किए जा सकते हैं।

फसलों में 3जी कटिंग तकनीक का सिद्धांत नर और मादा फूलों के अनुपात को इष्टतम बनाए रखना है। अधिकांश फसलों में नर और मादा फूलों का अनुपात असमान होता है। इसमें मादा फूलों की संख्या कम होती है।

3जी कटिंग के बाद देखा गया है कि मादा फूलों की संख्या बढ़ जाती है और पौधों में नर फूलों के बराबर या उससे अधिक हो जाती है। यह उत्तरदायी रूप से फसल का उत्पादन बढ़ाने का कारण बनता है। 3जी कटिंग से पहले और बाद में अनुपातों को बढ़ाकर, फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। 3जी कटिंग का मुख्य उद्देश्य पौधे में नर और मादा फूलों के उचित अनुपात को बनाए रखना है, ताकि इष्टतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके और फसल उत्पादन में अधिकाधिक वृद्धि हो सके।

यह उत्कृष्ट तकनीक फसल की वृद्धि में सुधार करती है, क्योंकि नियमित अंतराल पर पौधों की पत्तियों को काटने से नई पत्तियाँ उगती हैं। इससे पौधों की स्वस्थ वृद्धि सुनिश्चित होती है एवं प्रबंधन में सुविधा होती है। पौधों को विशेष आकार प्रदान करने से कटाई और छंटाई आसान हो जाती है। इससे किसानों को कम समय और मेहनत में अधिक काम करने की सुविधा मिलती है। साथ ही रोगों और कीटों से भी सुरक्षा मिलती है। नियमित कटिंग से पौधों के चारों तरफ हवादार और स्वच्छ वातावरण बनता है। इससे संक्रमण की आशंका कम हो जाती है एवं उत्पादन में वृद्धि होती है, क्योंकि नई पत्तियाँ जल्दी निकलती हैं और पौधों का कुल जैवमास बढ़ता है। इससे किसान अधिक उपज प्राप्त कर सकते हैं तथा फलों की गुणवत्ता में सुधार होता है। इस प्रकार बाजार में उच्च गुणवत्ता की सब्जियाँ बेचकर बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। जल और पोषक तत्वों का कुशल उपयोग होता है, क्योंकि पौधे से अनावश्यक पत्तियों को काटकर ऊर्जा और संसाधनों को सही दिशा में लगाया जाता है। इससे खेती अधिक सतत और पर्यावरण के अनुकूल बनती है। इस प्रकार, लत्तरदार सब्जियों की 3जी कटिंग विधि खेती में उत्पादन, गुणवत्ता और समग्र दक्षता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कद्दूवर्गीय सब्जियों के पौधे शीघ्र बढ़ने के साथ ऊंची सतह पर चढ़ते हैं। ये ट्रेलिस,

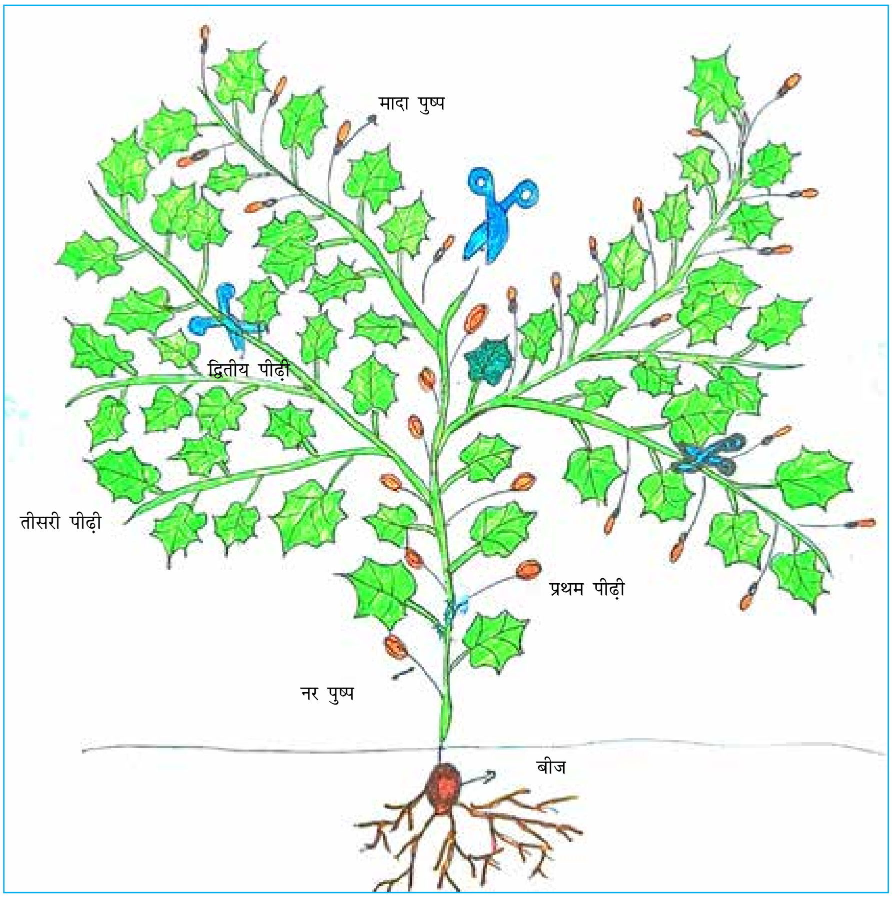

विशेष

3जी तकनीक में प्रथम पीढ़ी (1जी) एवं द्वितीय पीढ़ी (2जी) की शाखाओं की वृद्धि को नियंत्रित कर पौधे के पोषक तत्वों एवं ऊर्जा को तृतीय पीढ़ी (3जी) की तरफ आकर्षित कर मादा पुष्पों की संख्या को बढ़ाते हैं तथा उच्च गुणवत्ता पूर्ण अधिकाधिक फलन प्राप्त करते हैं। 3जी तकनीक कद्दूवर्गीय सब्जियों के साथ-साथ असीमित बढ़वार वाले टमाटर एवं शिमला मिर्च में भी काफी कारगर है। यह तकनीक फलों की संख्या एवं गुणवत्ता को बढ़ाती है।

नालन्दा उद्यान महाविद्यालय, नूरसराय, नालन्दा, बिहार

आर्क, परगोला और बाड़ पर बढ़ने के लिए बहुत अच्छे होते हैं, इससे खेत की जगह का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है। ये सब्जियाँ जैसे लौकी, कुम्हड़ा, नेनुआ, खीरा, करेला और तुरई आदि हैं। ये सब्जियाँ न केवल जगह की बचत करती हैं बल्कि ऊंचाई पर फैलकर अधिक उत्पादन देती हैं और उत्पादकता को बढ़ाती हैं। बलुई दोमट एवं मटियार दोमट मृदा में इन फसलों की खेती सफलतापूर्वक की जाती है।

कद्दूवर्गीय सब्जियों के बीज बोने का मुख्य समय जून-जुलाई होता है, और गर्मी की फसल के लिए दिसम्बर-जनवरी माह उपयुक्त है। बीज दर 4-6 किलोग्राम प्रति हैक्टर होती है। बीजों की बुआई के लिए खेतों के थालों में प्रति थाला 2-3 स्वस्थ बीज सीधे बोए जाते हैं। कुम्हड़ा एवं लौकी के लिए 2.5 से 3.00 मीटर की दूरी, नेनुआ के लिए 2.5 से 3.00 मीटर की दूरी और खीरा, करेला, तुरई के लिए 1.5 से 2.0 मीटर की दूरी रखी जाती है।

लाभ

- रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किए बिना समग्र उपज को बहुत आसानी से बढ़ाया जा सकता है।
- ऐसे किसान जिनके पास कम भूमि है, वे इस तकनीक द्वारा उत्पादन को आसानी से बढ़ा सकते हैं। विकासशील देशों में कई छोटे भूमिधारक किसानों के बीच यह तकनीक काफी प्रचलित है।
- इस तकनीक को अपनाने के लिए किसानों के समग्र उत्पादन एवं लाभ में वृद्धि होगी।
- यह तकनीक छोटी जोत वाले किसानों के लिये भी काफी लाभकारी है।
- इस विधि का उपयोग पौधों में फलों के आकार और गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए भी किया जाता है।

चुनौतियां

- इस तरह की अभियान्तरीय क्रियाओं हेतु तकनीकी मानव बल की आवश्यकता होती है।
- 3जी कटिंग में नियमित ध्यान देने और काटने की आवश्यकता होती है।
- पौधों के तने के कटने से रोगों के संक्रमण की आशंका होती है।
- उच्च उत्पादन सुनिश्चित करने के बावजूद उत्पादन में थोड़ी देरी होती है।

3जी कटिंग काफी लाभदायक तकनीक है और किसानों को उत्पादन के साथ-साथ आय को अधिकतम करने के लिए इस विधि के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। इस तकनीक को अपनाने से समग्र फसल उत्पादन में आसानी से वृद्धि हो सकती है। इस तकनीक का उपयोग करके रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता के बिना उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। खासकर कद्दूवर्गीय फसलों में इस तकनीक को अपनाने से कई उत्पादन सम्बन्धित बाधाएं दूर की जा सकती हैं। अतः किसान 3जी कटिंग तकनीक के माध्यम से फसल उत्पादन में वृद्धि कर अपनी आजीविका में सुधार कर सकते हैं। ■

कद्दूवर्गीय सब्जियों की उन्नत किस्में

- **लौकी**- डॉली सफेद, पूसा मंजरी, पूसा मेघदूत, काशी कीर्ति, काशी कुन्दन, काशी बहार, काशी गंगा, काशी किरण एवं पूसा नवीन आदि।
- **करेला**- पूसा दो मौसमी, कोयंबटूर लौंग ग्रीन, काशी उर्वशी, अर्का हरित, एवं पूसा औषधि आदि।
- **कुम्हड़ा**- सी.ओ-1, अर्का चन्दन, अर्का सूर्यमुखी, काशी शिशिर एवं काशी हरित आदि।
- **खीरा**- स्टेट-8, जापानी लौंग, पूसा संयोग, बालम खीरा, पूना खीरा एवं काशी नूतन आदि।
- **तुरई**- पूसा नसदार, सतपुतिया, काशी ज्योति, काशी खुशी एवं काशी शिवानी आदि।
- **नेनुआ**- काशी सौम्या, काशी श्रेया, काशी रक्षिता, काशी दिव्या, राजेन्द्र चमत्कार एवं पूसा चिकनी आदि।
- **पेठा कद्दू**- काशी सुरभि, काशी धवल एवं काशी उज्ज्वल आदि।

3जी कटिंग के चरण

- 3जी कटिंग कद्दूवर्गीय फसलों को उगाने के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीक है। इसे कुछ सोलनेसी कुल की सब्जियों में भी लाभप्रद पाया गया है जैसे असीमित बढ़वार वाले टमाटर एवं शिमला मिर्च में।
- बोए गए बीज से बढ़ने वाली मुख्य शाखा को सावधानीपूर्वक देखभाल और रखरखाव के साथ 6-7 फीट की ऊंचाई तक ठीक से बढ़ने की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।
- मुख्य शाखा लगभग 7-8 फीट की ऊंचाई तक पहुंचने के बाद पौधे की अग्रकलिका (एपिकल) से 4-5 इंच तक का भाग हटा दिया जाना चाहिए।
- एपिकल भाग को हटाने के बाद खाद्य पदार्थ पौधों की द्वितीय शाखा के गठन को बढ़ावा देता है। यह द्वितीय शाखा प्रकाश संश्लेषण द्वारा आहार को स्थानांतरित करती है।
- द्वितीयक पीढ़ी (2जी) की शाखा 2-3 फीट की ऊंचाई तक पहुंचने के बाद इस शाखा के ऊपरी एपिकल हिस्से को भी पिछले की तरह काट दिया जाता है। यह अब तृतीयक या तीसरी पीढ़ी (3जी) की शाखाओं के विकास को प्रोत्साहित करता है।
- तीसरी पीढ़ी की शाखाओं को सर्वोत्तम निषेचन और देखभाल के साथ बढ़ने और फल देने की अनुमति दी जानी चाहिए। इस पौधे से मादा फूलों के साथ भारी मात्रा में फूल खिलते हैं।

सिफारिशें

- पौधे की निचली 4-5 पत्तियों के साथ किसी भी द्वितीय शाखाओं को विकसित नहीं करना चाहिए।
- दूसरी पीढ़ी (2जी) की शाखाओं को 12वीं पत्ती के ठीक ऊपर से काट देना चाहिए।
- जब पौधे की ऊंचाई 7-8 फीट तक पहुंच जाती है तब पौधे की मुख्य शाखा के एपिकल हिस्से को काट देना चाहिए।
- शाखाओं को काटने से पहले मिट्टी में उचित नमी बनाए रखें। इस प्रक्रिया के दौरान पौधे के कटे अवशेष खेत में इकट्ठा ना छोड़ें।
- 3जी कटिंग के बाद वनस्पति विकास को बढ़ावा देने के लिए, पौधे को पर्याप्त सूर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसके अलावा सूर्य का प्रकाश कवक/फफूंद के विकास को कम करने में भी सहायता प्रदान करता है।

लीची के बागानों में मधुमक्खी पालन

सुनील कुमार[1], **अशोक धाकड़**[2], **इप्सिता सामल**[3], **अंकित कुमार**[4] और **बिकास दास**[5]

भारत में किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए अब परंपरागत खेती के साथ-साथ सहायक व्यवसायों को अपनाना बेहद जरूरी हो गया है। इसी कड़ी में लीची के बागों में मधुमक्खी पालन एक सफल और लाभकारी मॉडल बनकर उभरा है। लीची से तैयार शहद अपनी गुणवत्ता और स्वाद की वजह से काफी लोकप्रिय है और बाजार में इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। लीची के बागों में पुष्पण (मार्च) के समय मधुमक्खी के बक्सों (प्रति हैक्टर में 10-15 मधुमक्खी के छत्ते) को रखकर गुणवत्तापूर्ण शहद उत्पादन कर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

लीची (*लीची चाइनेन्सिस सोन*), जिसे 'फलों की रानी' के रूप में जाना जाता है, उच्च व्यावसायिक मूल्य का एक महत्वपूर्ण फल वृक्ष है। यह सैपिंडेसी (सोपबेरी) कुल से संबंधित है। दक्षिणी चीन को इसका उत्पत्ति स्थान माना जाता है। इसकी खेती दुनिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में व्यावसायिक रूप से की जाती है। मनोहर लाल रंग, स्वादिष्ट एवं उत्कृष्ट सुगंध और उच्च पोषण मूल्य के कारण इसके फल अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बहुत आकर्षक और लोकप्रिय होते हैं।

लीची के फलों के साथ-साथ लीची का शहद भी बहुत लोकप्रिय है और राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। हल्के सुनहरे रंग एवं लीची की विशेष खुशबू वाले शहद की खपत अमेरिका और जर्मनी सहित कई यूरोपीय देशों में बढ़ गई है तथा यह शहद दुनियाभर में अपनी अलग पहचान बना रहा है। लीची उत्पादन में परागण एक महत्वपूर्ण क्रिया है, क्योंकि फल की उपज और गुणवत्ता दोनों परागण की सीमा पर निर्भर होते हैं। लीची एक परपरागित फसल है। लीची में मुख्य रूप से परागण मधुमक्खी द्वारा किया जाता है।

लीची में पुष्पण के समय मधुमक्खियों द्वारा परागण

लीची के पुष्पक्रम (पेनिकल) में खिले हुए फूल

पुष्पण (मार्च) के समय लीची के बागों में मधुमक्खी के बक्सों (प्रति हैक्टर में 10-15 मधुमक्खी के छत्ते) को लगाने से उपज में लगभग 20-30 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। इसके अलावा मधुमक्खियां न केवल शहद

[1]वैज्ञानिक (फल विज्ञान); [2]वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी (फल विज्ञान); [3]वैज्ञानिक (कीट विज्ञान); [4]वैज्ञानिक (कृषि संरचना एवं प्रसंस्करण अभियांत्रिकी); [5]निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र, मुजफ्फरपुर, बिहार

लाभ

लीची से शहद निकालने का समय मुश्किल से 1 महीने का होता है। इतने ही दिनों में दो से तीन बार शहद निकाला जाता है। मुख्य रूप से मार्च माह में ही लीची से शहद का उत्पादन मधुमक्खी पालक करते हैं। लीची के पुष्प-गुच्छ अथवा मंजर में 10% फूलों के खिलने के बाद प्रभावी परागण के लिए मधुमक्खियों का एक अहम योगदान होता है। मधुमक्खियां फूलों से पराग एकत्रित करने के समय पर परागण में मदद करती हैं। इस प्रकार मधुमक्खी के बक्से को लीची के बगीचे में रखना काफी लाभप्रद होता है।

शहद प्रसंस्करण इकाई

का उत्पादन करती हैं, बल्कि बड़ी मात्रा में मोम और गोंद का भी उत्पादन करती हैं। लीची के बागों में गुणवत्तापूर्ण शहद उत्पादन कर अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। भारत में हर साल लगभग 1,200 से 1,500 टन लीची शहद का उत्पादन होता है।

शहद एकत्रित करती हुई मधुमक्खियां

लीची के बागों में मधुमक्खी के बक्सों (प्रति हैक्टर में 10-15) को पुष्पण (मार्च) के समय रखने से बेहतर फलन में मदद मिलती है। कई बार बागानों में छोटी काली चिड़िया लीची के फूलों में चोंच मारकर उन्हें गिरा देती हैं। लेकिन मधुमक्खियां जिन फूलों पर मंडराती हैं, चिड़ियां वहाँ नहीं आती हैं। इससे लीची के फूलों को सुरक्षित रखने में काफी मदद मिलती है। जबकि मधुमक्खियां लीची के फूलों को किसी भी तरह का कोई नुकसान नहीं पहुंचाती हैं।

सावधानियां

लीची में फूल खिलने के बाद कीटनाशी या अन्य कोई भी छिड़काव नहीं करना चाहिए। फल बनने की प्रक्रिया शुरू होते ही मधुमक्खियों के बक्सों को हटाकर ही बगीचे में समुचित छिड़काव किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर मधुमक्खियों के मरने से नुकसान की आशंका रहती है।

लीची व्यवसाय

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन और शहद मिशन के तहत किसानों को तकनीकी सहायता, प्रशिक्षण और सब्सिडी भी दी जाती है। इसके अलावा कृषि विज्ञान केंद्र और राष्ट्रीय मधुमक्खी बोर्ड भी सहायता प्रदान करते हैं।

मधुमक्खी पालन न सिर्फ शहद देता है, बल्कि फसलों की उपज और गुणवत्ता को भी बढ़ाता है। खासकर लीची जैसी फसलों में इसका असर सीधा दिखाई देता है। यदि आप लीची की खेती करते हैं, तो मधुमक्खी पालन मिलाकर अपनी आमदनी को दोगुना करने का यह सुनहरा मौका हाथ से न जाने दें।

भारत में लीची शहद का उत्पादन और निर्यात किसानों के लिए एक नई आय का स्रोत और देश के लिए एक निर्यात योग्य प्राकृतिक उत्पाद बनता जा रहा है। यदि वैज्ञानिक तरीके, उचित ब्रांडिंग और सरकारी सहायता को सही दिशा में इस्तेमाल किया जाए, तो यह क्षेत्र देश के शहद मिशन और कृषि आधारित उद्यमिता को मजबूती देने में बड़ी भूमिका निभा सकता है। ■

विपणन हेतु तैयार लीची का शहद

निवेदन

लेखक बंधु *फल फूल* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो मौलिक होने के साथ जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं। लेख भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा पोर्टल है :
epatrika.icar.org.in

–संपादक

लेट्यूस का लाभकारी उत्पादन

आँचल चौहान, हैप्पी देव शर्मा, दीपा शर्मा और **रीना शर्मा**

लेट्यूस एक पौष्टिक हरी पत्तेदार सब्जी है जो विटामिन 'ए', 'बी', 'सी', 'के' फोलिक एसिड और आहार फाइबर से भरपूर होती है। विटामिन 'ए' दृष्टि और त्वचा की सेहत में योगदान करता है, विटामिन 'सी' प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाता है और विटामिन 'के' रक्त के थक्के बनने से रोकने और हड्डियों की मजबूती में सहायक होता है। फोलिक एसिड गर्भवती महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण है और फाइबर पाचन तंत्र को स्वस्थ रखता है। लेट्यूस में पोटेशियम, आयरन और मैग्नीशियम जैसे खनिज भी होते हैं जो हृदय स्वास्थ्य और ऊर्जा में मदद करते हैं। इसकी कम कैलोरी और वसा वजन नियंत्रित करने में सहायक है। इसके एंटीऑक्सीडेंट्स मुक्त कणों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। लेट्यूस को अपने आहार में शामिल करके संपूर्ण पोषण प्राप्त कर सकते हैं और स्वास्थ्य को बेहतर बना सकते हैं। यह पौष्टिक और लोकप्रिय सब्जी न केवल स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है, बल्कि किसानों की आय को भी बढ़ाने में सक्षम है। लेट्यूस की फसल बीज बोने के बाद 40-60 दिनों में तेजी से तैयार होती है। इससे किसानों को एक वर्ष में कई बार फसल उगाने का अवसर मिलता है।

लेट्यूस के प्रति लोगों में बढ़ती जागरूकता और स्वस्थ जीवनशैली की ओर बढ़ते रुझान के कारण, इस सब्जी की मांग निरंतर बढ़ रही है। लेट्यूस का बाजार मूल्य अन्य हरी सब्जियों की तुलना में उच्च होता है। लेट्यूस की खेती में विशेष उपकरणों और महंगे रसायनों की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, उपभोक्ताओं में इसकी बढ़ती लोकप्रियता और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के कारण, लेट्यूस की मांग स्थिर रहती है। इसका मतलब है कि किसान अपनी फसल को अच्छे दाम पर बेच सकते हैं और बेहतर लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आइए जानें कि लेट्यूस की खेती कैसे की जाती है।

सब्जी विज्ञान विभाग, डॉ यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश

मृदा और जलवायु

लेट्यूस को विभिन्न प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है, लेकिन बलुई दोमट और सिल्टी दोमट, जैविक खाद से समृद्ध मृदा, सबसे उपयुक्त होती है। इसकी जड़ प्रणाली सतही होती है, इसलिए मृदा की ऊपरी परत में पर्याप्त पोषक तत्व और नमी होनी चाहिए। लेट्यूस के लिए आदर्श मृदा का पीएच मान 5.0 से 6.6 के बीच होना चाहिए। यह एक ठंडे मौसम की फसल है और 12 से 15.6 डिग्री सेल्सियस तापमान में अच्छी तरह से विकसित होती है। लेट्यूस के बीज 22 डिग्री सेल्सियस से अधिक तापमान पर नहीं उगते हैं। लेट्यूस के बीज उच्च तापमान और अंधेरे में जाने पर सुषुप्तावस्था में जा सकते हैं। हालांकि, बीजों को 4-6 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 3-5 दिनों तक ठंडा रखने से सुषुप्तावस्था बाधित हो जाती है। उच्च तापमान बीज के तने के विकास को बढ़ावा देता है, पत्तियों में कड़वाहट उत्पन्न करता है और टिप बर्न विकार उत्पन्न करता है।

बीज बुआई

लेट्यूस एक ठंडे मौसम की फसल है। इसे आमतौर पर मैदानों में सितंबर से नवंबर के बीच बोया जाता है। वहीं, ऊँचाई वाले क्षेत्रों में इसे मार्च से जून के बीच बोया जाता है। लेट्यूस को सामान्यत: नर्सरी में क्यारियों में बोया जाता है, और पौधे 4-6 सप्ताह में प्रत्यारोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। एक हैक्टर क्षेत्र में पौधों को तैयार करने के लिए लगभग 500-600 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। सीधे बीज से बोई गई फसल में अंकुरण के 4-6 सप्ताह बाद पौधों की छंटाई करनी होती है।

लेट्यूस की बुआई सामान्यत: छोटी सपाट क्यारियों में की जाती है। लेकिन कभी-कभी मृदा और सिंचाई की सुविधाओं के आधार पर इसे ढालों (रिज) पर भी प्रत्यारोपित किया जाता है। लेट्यूस की खेती के लिए पौधों के बीच उपयुक्त दूरी बनाए रखना आवश्यक है। आमतौर पर, पंक्तियों के बीच 30 से 45 सेंटीमीटर की दूरी और पौधों के बीच 20 से 25 सेंटीमीटर की दूरी बनाए रखी जाती है। यह दूरी पौधों को पर्याप्त हवा, प्रकाश और पोषण प्रदान करती है। इससे पौधों की वृद्धि सुचारु रूप से होती है और फसल की गुणवत्ता में सुधार होता है।

खाद एवं उर्वरक

लेट्यूस के लिए 10-15 टन गोबर की खाद, 60 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस और 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हैक्टर की सिफारिश की जाती है। गोबर की खाद की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय दी जाती है और फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा को बुआई या प्रत्यारोपण से पहले दिया जाता है। नाइट्रोजन की बची हुई आधी मात्रा को बुआई के एक महीने बाद निराई-गुड़ाई के साथ दिया जाता है।

सिंचाई और रखरखाव

लेट्यूस को स्वच्छ पानी की आवश्यकता होती है। प्रत्यारोपण के बाद पहली सिंचाई तुरंत करनी चाहिए और उसके बाद 4-5 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फसल की सतह को ढीला रखने के लिए 3-4 बार निराई-गुड़ाई की जाती है।

सस्य-क्रियाएँ

फसल को खरपतवार से मुक्त रखने और सही वायु संचलन के लिए सतही जुताई और निराई अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए 15-21 दिनों के अंतराल पर 3-4 बार हाथ से निराई करना पर्याप्त होता है। प्री-ट्रांसप्लांट चरण में फ्लूक्लोरालिन / 1.0-1.5 किलोग्राम/हैक्टर का उपयोग अधिकांश खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करता है।

लेट्यूस से भरपूर पोषण

कीट और रोग

लेट्यूस के प्रमुख कीटों में एफिड्स शामिल हैं इनसे निपटने के लिए निकोटिन सल्फेट या मैलाथियॉन स्प्रे का उपयोग किया जा सकता है। मुख्य रोगों में डाउनी मिल्ड्यू, स्लिमी सॉफ्ट रॉट और ग्रे मोल्ड रॉट शामिल हैं। इन रोगों से बचाव के लिए उचित प्रबंधन और कवकनाशी का उपयोग किया जाता है।

कटाई और उपज

पत्तियों की किस्मों की कटाई 50 से 60 दिनों में की जाती है, जबकि हैड किस्मों की कटाई 60-70 दिनों में की जाती है। हैड लेट्यूस की उपज प्रति हैक्टर 10,000 से 12,000 किलोग्राम होती है, जबकि पत्तियों की किस्में सामान्यत: अधिक उपज देती हैं।

कटाई और उपज

लेट्यूस की कटाई उसके प्रकार और उपयोग के आधार पर निर्भर करती है। विपणन के लिए हैड लेट्यूस को विकास के लिए छोड़ दिया जाता है। पत्तेदार किस्में 50-60 दिनों में तैयार होती हैं और तब काटी जाती हैं जब पत्तियाँ पूरी तरह से विकसित हो जाएं लेकिन नरम बनी रहें। इस प्रकार की किस्में 60-70 दिनों में कटाई के लिए तैयार होती हैं। इन्हें तब काटा जाता है जब वे अच्छा आकार ले लेते हैं और ठोस हो जाते हैं। घरेलू उपयोग के लिए लेट्यूस की पत्तियाँ किसी भी समय काटी जा सकती हैं, जबकि विपणन के लिए इसे पूर्ण आकार में विकसित होने दिया जाता है। हरी लेट्यूस की उपज 100-140 क्विं./है. के बीच होती है।

विपणन और भंडारण

कटाई के बाद, लेट्यूस को उचित आकार में बाँधकर बड़े बॉस्केट में रखा जाता है। ताजे लेट्यूस को सामान्य परिस्थितियों में कम समय के लिए ही रखा जा सकता है। लेट्यूस को 0°C पर 90 से 95% आर्द्रता में लगभग 3-4 सप्ताह तक संग्रहीत किया जा सकता है।

प्रमुख किस्में

लेट्यूस की खेती में चार प्रमुख वानस्पतिक किस्में उगाई जाती हैं:

- **सेल्टस:** इसे एस्केरड या एस्पैरेगस लेट्यूस भी कहते हैं। इसकी संकरी पत्तियाँ और मोटा, रसदार, खाद्य तना होता है।
- **हैड लेट्यूस:** इसे कैबेज लेट्यूस भी कहा जाता है। इसमें पत्तियाँ एक सघन हैड में मुड़ी होती हैं। इसके अंतर्गत दो वर्ग आते हैं:
- **बटरहैड:** जैसे बिब्ब लेट्यूस, जिसकी हेड्स नरम और मोटे, तैलीय पत्तियों से युक्त होती हैं।
- **क्रिस्पहैड:** जैसे आइसबर्ग लेट्यूस, इसमें पत्तियाँ टूटने वाली होती हैं और उचित तापमान की स्थिति में बहुत सख्त हैड्स बनती हैं।
- **लीफ लेट्यूस:** इसे कर्ल्ड लेट्यूस भी कहा जाता है। इसमें पत्तियाँ एक गुलदस्ते के रूप में होती हैं इसे कर्ल्ड, बारीक कटे, चिकनी किनारी वाली या ओक-पत्तियों के आकार की हो सकती हैं।
- **कॉस लेट्यूस:** इसे रोमैनी लेट्यूस भी कहा जाता है। इसमें चिकनी पत्तियाँ होती हैं जो एक ऊँचा, दीर्घकालिक, ढीला हैड बनाती हैं।

इन किस्मों की विविधता लेट्यूस के विभिन्न उपयोगों और पसंद के आधार पर किसान और उपभोक्ताओं को विकल्प प्रदान करती हैं।

उन्नत किस्में: पंजाब लेट्यूस न.-1, ग्रेट लेक्स, सिम्पसन ब्लैक सीडीड, अलामो-1, आदि।

खजूर में परागण

रामकेश मीना, जितेन्द्र गुर्जर और महेंद्र कुमार चौधरी

खजूर की खेती कठोर और शुष्क परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके पेड़ 75 से 100 वर्षों तक जीवित रहते हैं। हालांकि यह फसल जल की अधिक मांग करती है, परंतु इसकी विशेषता है कि यह अत्यधिक लवणीय मिट्टी में भी अच्छे से पनप सकती है। खजूर अत्यधिक उत्पादक फसल है और इसके पौधे का हर भाग किसी न किसी रूप में उपयोगी होता है। इसके फल न केवल उच्च कैलोरी युक्त होते हैं, बल्कि इनमें भरपूर पोषक तत्व भी होते हैं। इन्हीं कारणों से खजूर को रेगिस्तान का कल्पवृक्ष भी कहा जाता है। खजूर एकलिंगी पौधा है अर्थात नर तथा मादा पुष्प भिन्न-भिन्न वृक्षों पर लगते हैं। जिस वृक्ष पर नर पुष्प लगते हैं उन पौधों पर फल नहीं लगते हैं। इनसे केवल परागकण प्राप्त होता है। खजूर में प्राकृतिक रूप से परागण 5-10 प्रतिशत होता है क्योंकि नर पुष्प में सुगंध होती है लेकिन मादा में सुगंध नहीं होने के कारण मधुमक्खियां एवं अन्य कीट मादा पुष्पक्रम की तरफ आकर्षित नहीं होते हैं। इससे व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन प्राप्त नहीं होता है। इस कारण कृत्रिम परागण किया जाता है।

खजूर (*फीनिक्स डैक्टिलिफेरा एल*) एक प्राचीन और अत्यंत महत्वपूर्ण फसल है। इसे फलों की खेती की शुरुआत का प्रतीक भी माना जाता है। इसकी उत्पत्ति लगभग 5000 ईसा पूर्व मेसोपोटामिया के बसरा क्षेत्र (वर्तमान इराक) में मानी जाती है। आज खजूर की खेती विश्व के 40 से अधिक देशों में की जाती है। वैश्विक स्तर पर खजूर का क्षेत्रफल 1.11 मिलियन हैक्टर है और इससे सालाना करीब 90 से 95 लाख टन (9.5 मिलियन टन) खजूर का उत्पादन होता है।

भारत में खजूर की प्रमुख खेती गुजरात के कच्छ क्षेत्र में होती है। इसके अतिरिक्त, पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में भी इसकी खेती की जाती है। राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर और जोधपुर जैसे जिले खजूर की खेती के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। इसके अलावा चुरू, श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ और नागौर में भी खजूर उत्पादन की अच्छी संभावनाएं हैं।

नर पुष्पक्रम

मादा पुष्पक्रम

केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, राजस्थान

नर पुष्पक्रम की कटाई

- खजूर में नर पौधों में पुष्पण की शुरुआत फरवरी-मार्च तथा मादा पौधे में मार्च-अप्रैल में होती है। नर पुष्पक्रम खोल अथवा कवर जिसे स्पेथ कहते हैं, वह फटना शुरू हो जाये या उसका निचला हिस्सा सूख जाए तो वह परिपक्व माना जाता है। इस समय कृत्रिम परागण हेतु पराग को पुष्प से पृथक करके एकत्रित करना आवश्यक होता है या अंगूठे और उंगलियों के बीच पुष्पक्रम को दबाने से यदि क्रैकिंग की आवाज सुनाई देती है तो यह परिपक्वता का संकेत माना जाता है।
- अधिकतम परागकण प्राप्त करने के लिए सुबह के समय आधे खुले पुष्पक्रम को काटना बेहतर होता है।
- परागकणों की क्षति को रोकने के लिए स्पेथ से पुष्पक्रम पूरी तरह बाहर निकलने से पूर्व ही उसे नर पौधे से काटकर पृथक करके स्वच्छ स्थान पर कमरे में रखना चाहिए।

परागण के तरीके

परागण या तो हस्त द्वारा या यांत्रिक रूप से किया जा सकता है।

नर पुष्पक्रम लड़ियों से परागण

इस तरीके में 2-3 ताजा नर पुष्पक्रमों से 2-3 लड़ियों को काटकर मादा गुच्छों के भीतर एक उल्टी स्थिति में रखकर हिलाया जाता है और परागण के बाद लड़ियों के साथ मादा स्पेथ को बांध दिया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि नर स्ट्रैंड कुछ समय के लिए मादा गुच्छों के भीतर रहे जिससे उसमें परागकण धीरे-धीरे गिरते

हस्त परागण

यह सामान्यतया प्रयोग में लाया जाने वाला तरीका है। इसमे रुई के फोहों को परागकणों में डुबोकर तुरंत खिले मादा पुष्पक्रमों पर छिड़का जाता है और रुई को मादा पुष्पक्रमों के बीच में ही छोड़कर पुष्पक्रम को बांध दिया जाता है। इस विधि से परागण अधिक प्रभावी होता है तथा फल लगने का प्रतिशत भी बढ़ जाता है।

हस्त परागण

रहें। इस विधि में अन्य विधियों की तुलना में अधिक श्रमिक लगते हैं तथा परागण दक्षता भी कम होती है।

तरल परागण

इस विधि में परागकण को पानी के साथ 3-4 ग्राम प्रति लीटर की दर से मिलाकर तरल घोल बनाते हैं। इस घोल को हस्तचालित छिड़काव यंत्र (स्प्रेयर) से मादा पुष्पक्रम पर छिड़का जाता है। एक मादा पुष्पक्रम के लिए 100 मि.ली. घोल पर्याप्त होता है। इस घोल में 10 प्रतिशत सुक्रोज और 20 पीपीएम जी ए$_3$ मिलाने से परागकण की परागण क्षमता बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप अधिक संख्या में फल लगते हैं तथा फल की उपज अधिक मिलती है।

नर पुष्पक्रम लड़ियों से परागण

यांत्रिक परागण

खजूर में परागण बहुत श्रम गहन प्रक्रिया है। एक पेड़ पर 6-10 बार चढ़ना पड़ता है क्योंकि सभी पुष्पक्रम एक समय में कभी नहीं खुलते हैं। इजराइल और यूएसए आदि जैसे देशों ने मशीनीकृत परागण विधियों को विकसित किया गया। इसमें पराग को मोटर डस्टर्स के माध्यम और ड्रोन से खुले मादा पुष्पक्रमों पर छिड़का जाता है।

परागण प्रक्रिया

- परागण आमतौर पर किसानों द्वारा प्रात:काल किया जाता है। हालांकि शोध से संकेत मिलता है कि सूर्योदय के बाद 11.00 बजे से 3.00 बजे के बीच परागण करने से अधिक फल सेटिंग होती है।
- परागकणों की कमी के कारण, परागण से पहले उन्हें बिना फल सेटिंग को प्रभावित किये गेहूं का आटा, राख, टैल्कम पाउडर इत्यादि जैसी निष्क्रिय सामग्रियों के साथ 50: 50 के अनुपात में मिश्रित किया जाता है।
- मादा पुष्पक्रम को इसके खुलने के 2-3 दिनों के भीतर परागण करना

छिड़काव विधि से परागण

चाहिए। कभी-कभी, यदि पुष्पक्रम को विभाजित करना शुरू कर दिया जाता है, तो श्रम लागत को कम करने के लिए इसे हस्त द्वारा खोला जा सकता है और परागण किया जा सकता है।
- यदि परागण के तुरंत बाद या 24 घंटों के भीतर बेमौसमी बारिश या तेज हवा चलती है, तो परागण प्रक्रिया को दोहराना पड़ता है।

परागकण का फल की गुणवत्ता पर प्रभाव

खजूर में परागकण के स्रोत एवं गुणवत्ता का प्रभाव फल के विकास, आकार, परिपक्व होने में लगने वाला समय, गुणवत्ता तथा उपज पर होता है। इस प्रभाव को मेटाजीनिया कहते हैं। परागकण का स्त्रोत बीज के आकार, आकृति तथा रंग को भी प्रभावित करता है इस घटना को जीनिया कहते हैं।

सफल परागण की स्थिति

मादा फूल में तीन कार्पेल होते हैं जो कि सफल परागण की स्थिति में एक फल के रूप में विकसित होगा अन्यथा तीनों कार्पेल बीजरहित फल में विकसित होते हैं। ■

उन्नत परागण प्रक्रिया से बेहतर उपज

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

पोषण से भरपूर उपेक्षित सब्जियां

आर.के. सिंह[1], आकांक्षा सिंह[2], सौरभ सिंह[3], बृज बिहारी शर्मा[4] और **अर्जुन लाल ओला[5]**

उपेक्षित या कम उपयोगी सब्जी फसलें वे हैं जो न तो बड़े पैमाने पर व्यावसायिक रूप से उगाई जाती हैं और न ही व्यापक रूप से उपलब्ध होती हैं। इन फसलों में खाद्य सुरक्षा, पोषण सुरक्षा, आय सृजन और लोगों की खाद्य श्रृंखला को विविधतापूर्ण बनाने की अपार क्षमता निहित है। भारत जैविक विविधता के दृष्टिकोण से समृद्ध है। देश का वैश्विक जैव विविधता में महत्वपूर्ण योगदान है। कई उपेक्षित सब्जियाँ पोषण और औषधीय गुणों से भरपूर हैं, और इन्हें मानव आहार में महत्व प्राप्त हो रहा है। इन फसलों के लिए उभरते हुए बाजार अवसर, कम अनुकूल पर्यावरण में रहने वाले किसानों के लिए अतिरिक्त आय सृजन के मार्ग प्रदान कर सकते हैं। यहाँ इन फसलों को प्रमुख खाद्य फसलों की तुलना में विशेष लाभ होता है। इसके अतिरिक्त, इन उपेक्षित फसलों का समावेश खाद्य श्रृंखला को विविध बनाएगा और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से संबंधित समस्याओं को हल करने में सहायक हो सकता है।

बुंदेलखंड एक ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र है, जो मध्य और उत्तर भारत में स्थित है। यह क्षेत्र एक प्रस्तावित राज्य के रूप में और एक पर्वत श्रृंखला के रूप में भी पहचाना जाता है।

वर्तमान में, यह पहाड़ी क्षेत्र उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बीच विभाजित है। इसमें अधिकांश भाग मध्य प्रदेश में स्थित है। इस क्षेत्र में कृषि प्रमुख आर्थिक गतिविधि है, लेकिन कृषि हेतु उपलब्ध भूमि अन्य कृषि क्षेत्रों की तुलना में अपेक्षाकृत कम है।

बुंदेलखंड में वर्षा की मात्रा और सिंचाई की स्थिति का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह क्षेत्र खरीफ (मानसून) फसलों के लिए उपयुक्त है, फिर भी यहां की अधिकांश भूमि पर फसलें रबी (पोस्ट-मानसून) मौसम में उगाई जाती हैं। उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र मुख्य रूप से दलहन उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है, जबकि गेहूं, चावल, जौ, ज्वार, बाजरा, तिलहन बीज और पत्तेदार बेल जैसी फसलें भी यहां उगाई जाती हैं।

कंटोला

सिंचाई जल स्रोतों के संदर्भ में, बुंदेलखंड में नदियां जैसे केन और बेतवा प्रमुख जल स्रोत हैं। इन नदियों का उपयोग दिआरा (बाढ़ प्रभावित) खेती के लिए किया जाता है, जहां विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ जैसे तरबूज, खरबूजा, कद्दू और कड़बी घीया आदि फसलें उगाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सरकारें बुंदेलखंड में जैट्रोफा की खेती को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहित करने का प्रयास कर रही हैं, जिससे बायो-डीजल के उत्पादन में वृद्धि हो सके।

बुंदेलखंड क्षेत्र में पाई जानी वाली उपेक्षित सब्जियाँ

कलमी शाक (*इपोमिया एक्वाटिक*): यह एक जलीय पौधा है इसकी लंबी और खोखली डंठल होती है, जिनमें कई वायुमार्ग उपस्थित होते हैं। यह बेलदार प्रकार का पौधा होता है और इसके नोड्स पर प्राय: जड़ें उत्पन्न होती हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र में इसे

[1]प्राध्यापक (उद्यान); [2]यंग प्रोफेशनल; [3]शिक्षण सह अनुसंधान सहायक; [4]सह प्राध्यापक; [5]सहायक प्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

भारतीय कमल (*नेलुम्बो न्यूसीफेरा*) गार्टन: भारतीय कमल एक महत्वपूर्ण जलीय फसल है, जिसे पूरे एशिया में उगाया और उपभोग किया जाता है। यह पौधा विशेष रूप से बुंदेलखंड क्षेत्र के तालाबों में उगता है। इसके विभिन्न भागों का उपयोग औषधीय उद्देश्यों के लिए किया जाता है, जो विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों जैसे लोक चिकित्सा, आयुर्वेद, चीनी पारंपरिक चिकित्सा और पूर्वी चिकित्सा में प्रचलित हैं। बुंदेलखंड में इसकी जड़ (रूट्स) का मुख्य रूप से सब्जी के रूप में सेवन किया जाता है, जबकि इसके पत्तों का उपयोग पारंपरिक रूप से थाली के रूप में किया जाता है। इसकी जड़ में उच्च फाइबर सामग्री होती है, जो पाचन तंत्र के सामान्य संचालन में सहायता करती है। साथ ही यह कार्बोहाइड्रेट्स का समृद्ध स्रोत है, जो ऊर्जा प्रदान करने में सहायक होते हैं।

पोषक तत्व से भरपूर बीन्स

"करेमु" के नाम से जाना जाता है। कलमी शाक (*इपोमिया एक्वाटिका*) एक अत्यधिक पोषक और आर्थिक रूप से सस्ती पत्तेदार सब्जी है। इसका उपयोग कोमल डंठल और पत्तियों के रूप में किया जाता है। यह मुख्य रूप से वर्षा ऋतु में खेतों में उगती है और बीज या हर्बेसियस कटिंग के माध्यम से प्रसारित होती है। इसे उल्टी आने, मूत्रवर्धक, दस्तावर, कमजोरी और यकृत संबंधी विकारों के उपचार में पारंपरिक रूप से उपयोग किया जाता है। यह पत्तेदार सब्जी बुंदेलखंड के उपोष्णकटिबंधीय वातावरण में अच्छी तरह से उगती है।

चीनी जलकंद: बुंदेलखंड में इसे स्थानीय रूप से कुसयाल के नाम से जाना जाता है। भारत में, विशेष रूप से कोलकाता में इसे सिंगापुरी कीसर के नाम से विपणन किया जाता है। जलकंद एक मेवा नहीं, बल्कि एक जलीय शाक है जो दलदलों, जलमग्न क्षेत्रों और कीचड़ में उगता है। इसके छोटे, गोलाकार कॉर्म्स में कुरकुरा, सफेद गूदा पाया जाता है। इसे कच्चा या हल्का उबालकर सेवन किया जा सकता है। कच्चे जलकंद में हल्की मिठास और कुरकुरापन होता है। उबाले गए कॉर्म्स को बुंदेलखंड के झांसी क्षेत्र में ट्रेनों के माध्यम से बेचा जाता है। यह कार्बोहाइड्रेट्स और स्टार्च का एक समृद्ध स्रोत है।

खट्टी बेल (रूमेक्स एसिटोसा एल): गार्डन सोरेल एक प्रमुख पौधा है जिसे सलाद या पॉटहर्ब्स के रूप में उगाया जाता है। रूमेक्स जाति में वार्षिक, द्विवार्षिक और बहुवर्षीय हर्ब्स शामिल होते हैं। यह पौधा विशेष रूप से बुंदेलखंड क्षेत्र के नदी और तालाबों के अर्ध दलदली क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। सोरेल के पत्तों में तीव्र नीबू जैसे स्वाद के गुण होते हैं और इन्हें खाद्य सलाद में या पकाकर सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस पौधे में ऑक्सालिक अम्ल की उपस्थिति होती है। इसके पत्तों में शीतलन, मूत्रवर्धक, रक्त शोधक और त्वचा रोगों के उपचार में सहायक गुण होते हैं। होम्योपैथी में भी इसका उपयोग किया जाता है।

तलवार सेम (*कैनावलिया ग्लैडिएटा जैक*): इसे कोमल फली के लिए उगाया जाता है, जिनका सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त, अन्य फलियों की तरह पूरी तरह से विकसित अधपके बीजों का भी परिपक्व सब्जी के रूप में सेवन किया जाता है। बुंदेलखंड क्षेत्र में इसकी युवा पत्तियों

उपेक्षित सब्जियों का महत्व

पोषण सुरक्षा:- कम उपयोगी सब्जियाँ विटामिन, खनिज, फाइबर और आहार की विविधता का समृद्ध स्रोत हैं। ये फोलिक एसिड का एक समृद्ध स्रोत होती हैं, जिसे सामान्यत: फोलेट के नाम से जाना जाता है। फोलिक एसिड कोशिकाओं की वृद्धि और परिपक्वता में सहायक होता है। इसकी कमी से विशेष रूप से शिशुओं और गर्भवती महिलाओं में एनीमिया की समस्या हो सकती है। कम उपयोगी सब्जी फसलों में विभिन्न प्रकार के खनिज जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, आयरन, आयोडीन, जिंक और मॉलिब्डेनम होते हैं। इसके अतिरिक्त, ये पारंपरिक रूप से कृषि प्रणाली का हिस्सा रही हैं, विशेष रूप से गृह उद्यानों में।

औषधीय गुण:- कई उपेक्षित सब्जियों में विभिन्न औषधीय गुण होते हैं। कलमी शाक (*इपोमिया एक्वाटिक*) एक हर्बेसियस जलीय या अर्ध-जलीय बेलदार पौधा है। इसकी कोमल डंठल और पत्तियाँ सब्जी के रूप में उपयोग की जाती हैं या सॉस और सूप में डाली जाती हैं। यह मधुमेह का उपचार करती है और बिच्छू के विष का प्रतिविषक होती है। इसे उल्टी लाने वाली, मूत्रवर्धक, दस्तावर, कमजोरी, यकृत संबंधी समस्याओं के उपचार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

विपरीत मृदा और जलवायु परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन क्षमता

उपेक्षित सब्जियों में कई तनावजनक परिस्थितियों, जैसे कि अत्यधिक नमी की कमी, नमी तनाव और प्रतिकूल तापमान के प्रति सहनशीलता की असाधारण क्षमता होती है। उदाहरणस्वरूप, कई कम उपयोगी सब्जियाँ, जैसे कि चीनी जलकंद (*एलियोकारिस डुल्लिस*), जो दलदली क्षेत्रों, जल के भीतर और कीचड़ में उगने वाली जल-संवेदनशील फसलें हैं, इन गुणों से समृद्ध होती हैं।

चकवड़ (*कैसिया तोरा*)
बुंदेलखंड क्षेत्र में कैसिया तोरा को स्थानीय रूप से चकवड़ या चकौड़ा कहा जाता है। यह पौधा प्राचीन काल में बुंदेलखंड में एक प्रमुख और पसंदीदा सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता था। इस उपेक्षित सब्जी फसल की क्षेत्र में विविधता का बड़ा संग्रह पाया जाता है। वर्षा ऋतु की पहली बौछार के साथ, यह पौधा स्वचालित रूप से उगने लगता है, और गर्मी में सूखने के बाद जो भूमि खाली हो जाती है, वह पुनः घास और पौधों से हरी-भरी हो जाती है। इसके पत्ते स्लेटानुमा होते हैं और इनमें तीन जोड़ी पत्तियाँ पाई जाती हैं। कैसिया तोरा में विभिन्न औषधीय गुण होते हैं। इसके सभी भागों का उपयोग कई प्रकार की चिकित्सीय स्थितियों के उपचार में किया जाता है। हालांकि, बुंदेली समुदाय में मुख्य रूप से इसके कोमल पत्तों का उपयोग सब्जी के रूप में होता है। इसे स्थानीय भाषा में भुर्रा कहा जाता है।

का उपयोग मवेशियों के चारे और हरित उर्वरक के रूप में किया जाता है। इस पौधे में विभिन्न एंटी-न्यूट्रिशनल तत्व पाए जाते हैं, जैसे कोंकानावालिन ए और बी।

कन्ना (*कन्ना एडुलिस*): यह एक खाद्य पौधा है, जो अपने स्टार्चयुक्त कंद के लिए प्रसिद्ध है। यह भारत के उत्तर-पूर्वी हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाता है। बुंदेलखंड में इसे सामान्यतः 'केली' के नाम से जाना जाता है। यहां इसे व्यावसायिक रूप से उगाया नहीं जाता, बल्कि ये पौधे स्वाभाविक रूप से दलदली भूमि या जलोढ़ क्षेत्र में उगते हैं। इसे कभी-कभी चारे के रूप में या सजावटी पौधे के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके युवा कंदों का सेवन सब्जी के रूप में किया जाता है। कन्ना स्टार्च कंदों से एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है, जिसमें कंदों को घिसने, धोने और छानने की प्रक्रिया से स्टार्च निकाला जाता है। अंतिम उत्पाद एक चमकदार क्रीमी रंग का पाउडर होता है।

पत्तेदार सब्जी

टमाटिलो/छिलका टमाटर (फिजलिस इक्सोकार्पा ब्रोट/फिजलिस फिलाडेल्फिका): टमाटिलो की पत्तियाँ टमाटर जैसी होती हैं। यह पौधा लगभग 60 सेंटीमीटर तक ऊँचा बढ़ता है, जो अखरोट के आकार का फल उत्पन्न करता है। बुंदेली भाषा में इसे 'पेदकुआ' के नाम से जाना जाता है। टमाटिलो के पौधे विभिन्न प्रकार की मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों के प्रति सहनशील होते हैं। इस कारण इसे व्यावसायिक रूप से नहीं उगाया जाता, बल्कि यह स्वाभाविक रूप से उगता है। टमाटिलो का फल ग्राउंड चेरी से कम मीठा होता है। इसके फल में बीज होते हैं, परंतु यह ठोस होता है। इसमें टमाटर जैसी रसीली गुहाएं नहीं होती। टमाटिलो विटामिन ए से भरपूर होता है।

कंटोला/करेला (*मोमोर्डिका डायोइका*):- कंटोला का सेवन आदिवासी समुदायों द्वारा किया जाता है, जो प्राकृतिक वन क्षेत्रों, विशेष रूप से अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में निवास करते हैं, यहाँ के स्थानीय लोग इसे दैनिक आहार के रूप में सेवन करते हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र में इस पौधे की विविधता पाई जाती है। बुंदेली भाषा में इसे "पंडोरा" कहा जाता है। यह सब्जी प्रारंभ में बहुत लोकप्रिय नहीं थी, जब तक कि इसके उच्च पोषण और औषधीय गुणों का पता नहीं चला। इसके अधपके, कोमल हरे फल को सब्जी के रूप में पकाकर खाया जाता है। दोनों प्रकार के कच्चे फल, सैंटी और अपेटाइजर के रूप में उपयोग किए जाते हैं। इस पौधे में आवश्यक विटामिन्स जैसे एस्कॉर्बिक एसिड, कैरोटीन, थायमिन, राइबोफ्लाविन और नायसिन की कम मात्रा पाई जाती है।

भारत, वैश्विक स्तर पर सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। बुंदेलखंड क्षेत्र में कई उपेक्षित और कम उपयोग की जाने वाली सब्जियों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। ये उच्च पोषणात्मक और औषधीय गुणों से संपन्न होती हैं। ये सब्जियाँ बुंदेली समुदायों के लिए पोषण सुरक्षा और आय का महत्वपूर्ण स्रोत प्रदान कर सकती हैं। बुंदेलखंड क्षेत्र जलवायु परिवर्तन, असमान भू-आकृति, संसाधनों के अत्यधिक उपयोग और कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति से प्रभावित है। उपेक्षित सब्जियाँ प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में अच्छी तरह से उगने की क्षमता रखती हैं। ये कृषि उत्पादकों, उपभोक्ताओं और पर्यावरण विशेषज्ञों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं, यदि इन्हें उचित रूप से संवर्धित किया जाए।

गुणकारी कचरी

कचरी/पोई (*बेसेला प्रजाति*)
बसेल, जिसे भारतीय पालक या पोई भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण पत्तेदार सब्जी है। यह भारत के अधिकांश हिस्सों में उगाई जाती है। इसकी खेती विशेष रूप से दक्षिणी और उत्तर-पूर्वी भारत में प्रचलित है। यह एक अत्यधिक उत्पादक पत्तेदार पौधा है, जो शाक वाटिका के लिए उपयुक्त होता है। भारतीय पालक को सामान्यतः सब्जी के रूप में उगाया जाता है और पकाने के बाद यह स्वादिष्ट और पोषक तत्वों से भरपूर सब्जी बनती है। बुंदेलखंड में इसके पके हुए बैंगनी रंग के छोटे फल का सेवन किया जाता है। इसके लाल फल का रस स्याही, सौंदर्य प्रसाधन और खाद्य रंग के रूप में उपयोग किया जा सकता है। भारतीय पालक के पौधों का उपयोग सजावटी उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है। इसकी युवा पत्तियाँ एक रेचक के रूप में प्रयुक्त होती हैं। यह पौधा ऑक्सालिक अम्ल, विटामिन और खनिजों का समृद्ध स्रोत होता है।

इन कम उपयोग की जाने वाली सब्जियों के निम्न उपयोग का मुख्य कारण बुआई सामग्री की कमी, इनके पोषण और औषधीय गुणों के प्रति जागरूकता का अभाव और इन फसलों की उत्पादन तकनीकी के बारे में जानकारी का अभाव है। यदि इन सभी समस्याओं को हल किया जाए, तो ये उपेक्षित सब्जियाँ पोषण और आय सृजन के महत्वपूर्ण अवसर प्रदान कर सकती हैं। ■

लाल मूली की उन्नत किस्म काशी लोहित

बी.के. सिंह, भुवनेश्वरी एस और **नीरज कुमार प्रजापति**

काशी लोहित, भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश से विकसित लाल रंग की मूली की एक नई किस्म है। इसमें जड़ की बाहरी त्वचा लाल और जड़ का आंतरिक भाग सफेद होता है। इस प्रजाति को वर्ष 2018 में जारी किया गया और वर्ष 2019 में केंद्रीय बीज समिति द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के लिए अधिसूचित किया गया। यह एक उष्णकटिबंधीय प्रकार की किस्म है, जिसमें हरे रंग की पत्तियां एवं जड़ें गुलाबी रंग की होती हैं। पत्तियों की आकृति वीणाकार एवं जड़ लंबी एवं पतली और मध्यम आकार की आकर्षक एवं चमकदार लाल होती है। काशी लोहित की जड़ों में एंथोसायनिन (4.0-4.5 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम), एस्कॉर्बिक एसिड (20-23 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम, सफेद जड़ वाली किस्मों की तुलना में लगभग 32 प्रतिशत अधिक), कुल फेनोलिक मात्रा (28-32 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम) और प्रतिऑक्सीकारक क्षमता (3.30-3.55 माइक्रॉनमोल प्रति ग्राम, सफेद जड़ वाली किस्मों की तुलना में लगभग 100 प्रतिशत अधिक) होती है। लाल मूली को पकाने से सक्रिय एंथोसायनिन की मात्रा कम हो जाती है, कम से कम छीलने वाली कच्ची मूली खाने और सलाद के लिए उपयुक्त होती है। लाल मूली सलाद को न केवल आकर्षक और स्वादिष्ट बनाती है बल्कि पौष्टिक भी बनाती है।

मूली (*रैफेनस सटाइवस लि.*) अपनी मुलायम जड़ों और कोमल पत्तियों के लिए दुनिया के उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों में उगाई एवं खाई जाने वाली एक लोकप्रिय सलाद सब्जी है। कोमल पत्तियों और जड़ों को सलाद, सब्जी एवं अचार इत्यादि विभिन्न तरीकों से उपयोग में लाया जाता है। मूली का खाने योग्य भाग रूपान्तरित जड़ (तर्कुआकार) होता है जो प्राथमिक जड़ तथा बीजपत्राधार दोनों से विकसित होता है। हालांकि मूली की जड़ का रंग सामान्यत: सफेद होता है। रंगीन जड़ वाली यानी गुलाबी, लाल, बैंगनी और पीली मूली भी प्रकृति में पायी जाती हैं। इसके अलावा, मूली अपनी जड़ों की लम्बाई (छोटी, मध्यम और बड़ा), जड़ के आकार (शंक्वाकार, बेलनाकार और गोलाकार), और पत्तियों की आकारिकी (वीणाकार, लहरदार और संपूर्ण) में भिन्न होती है।

मूली से निकाले गए एंथोसायनिन का उपयोग खाद्य उद्योग में पेस्ट्री, टॉफी, पेय पदार्थ, आईसक्रीम आदि में प्राकृतिक रंग के रूप में भी किया जाता है। पौधजनित एंथोसायनिन की महत्ता एवं उपयोगिता के कारण भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान,

भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी-221305

गुणकारी

रंगबिरंगे खाद्य उत्पादों के सेवन के स्वास्थ्य लाभ के बारे में जागरूकता में वृद्धि के कारण, मूली की किस्मों का चयन और उत्पादन में सुधार करने के प्रयास निरंतर किए जाते रहे हैं। लाल और बैंगनी मूली क्रमश: द्वितीयक मेटाबोलाइट, पानी में घुलनशील वर्णक एंथोसायनिन मुख्य रूप से पेलार्गोनिडिन और साइनिडिन से भरपूर होती हैं। विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि वर्णक एंथोसायनिन से भरपूर लाल/बैंगनी सब्जियाँ/फल शरीर में प्रतिऑक्सीकारक क्षमता को बढ़ाते हैं। ये अंतत: हृदय रोग की आशंका और मोटापे को कम करते हैं। यह वर्णक एथेरोस्क्लेरोसिस के गठन और प्रगति को रोकता है, एवं मधुमेह और विभिन्न प्रकार के कैंसर के जोखिम को भी कम करता है।

पोषण से भरपूर

वाराणसी द्वारा लाल/बैंगनी मूली की प्रजातियों के विकास के लिए अनुसंधान कार्य किया जा रहा है तथा लाल मूली की एक किस्म काशी लोहित विकसित की गयी है।

उत्पादन तकनीक

जड़वाली फसल होने के कारण, इसके लिए ऐसी मिट्टी की आवश्यकता होती है जो ढीली और भुरभुरी हो, जिसका पीएच मान 6.0-7.0 और कार्बनिक पदार्थों से भरपूर हो। उचित जल निकासी सुविधा वाली बलुई दोमट मिट्टी खेती और अगेती कटाई के लिए सबसे उपयुक्त है। अनुशंसित बीज दर 6-8 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर, मध्य सितंबर से मध्य दिसंबर तक सर्दियों की बुआई के लिए उपयुक्त है।

बीजों की बुआई क्रमशः 6-8 सें.मी. और 45-50 सें.मी. की दूरी पर एक मेड़ पर दोहरी पंक्तियों में करना उपयुक्त है। पौधों के बीच 4-5 सें.मी. की उचित दूरी के लिए थिनिंग की जानी चाहिए। इसके अलावा,

मूली सलाद

स्वास्थ्य के लिए बेहतर

जड़ों के उचित विकास के लिए बुआई के 20-25 दिनों के बाद गुड़ाई और मिट्टी चढ़ानी चाहिए। उर्वरक में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की अनुशंसित पोषक तत्व आवश्यकता 60-40-40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर है। इसे अंतिम जुताई के समय मृदा में मिला देना चाहिए।

पौध सुरक्षाः सर्दियों के मौसम में कीटों और रोगों का कोई बड़ा प्रकोप नहीं देखा गया है। इसके अलावा, बसंत के मौसम की शुरुआत के दौरान माहूँ को जरूरत आधारित कीटनाशकों जैसे कि साइंट्रानिलिप्रोल 10 ओ.डी. 600 मि.ली. प्रति हैक्टर या एजेडिरैक्टिन (5 प्रतिशत) 400 मि.ली. प्रति हैक्टर या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 700 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

उपजः बुआई के लगभग 40-45 दिनों में जड़ें खाने योग्य हो जाती हैं। इसकी जड़ों की लंबाई 21-24 सें.मी., जड़ का वजन 140-150 ग्राम, जड़ का व्यास 2.75-3.00 सें.मी., पौधे का वजन 225-250 ग्राम तथा उपज क्षमता 600-700 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है। यह किस्म खुज्जापन (पिथीनेस) के प्रति सहिष्णु है इसलिए देर से उखाड़कर भी विपणन किया जा सकता है।

व्यावसायीकरण एवं बीज उत्पादनः काशी लोहित प्रजाति के बीजों का वर्ष 2019 से भाकृअनुप- भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी द्वारा उत्पादन और विक्रय किया जा रहा है। यह प्रजाति वर्ष 2020 से प्रजनक बीज श्रृंखला में है। इसके अलावा, काशी लोहित का राष्ट्रीय बीज निगम द्वारा वर्ष 2020-21 के दौरान 10.6 क्विंटल और वर्ष 2021-22 के दौरान 103.1 क्विंटल बीज उत्पादन करके बड़े पैमाने पर व्यावसायीकरण किया जा रहा है। ■

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' अक्टूबर, 2025 अंक के प्रमुख आकर्षण

- मानव स्वास्थ्य में लाभकारी गेहूं घास
- अरुणाचल प्रदेश में क्विनोआ की खेती
- उतेरा विधि से खेसारी की उन्नत खेती
- कार्बन खेती से पर्यावरण संरक्षण
- बकरीपालन से आदिवासी कृषकों का उत्थान
- फसल अवशेषों का बाह्य-स्थल प्रबंधन
- सोयाबीन में समेकित कीट प्रबंधन
- जैव उर्वरकों से बढ़ाएं मृदा एवं फसल स्वास्थ्य
- शूकर पालन से बढ़ाएं आमदनी
- धान उत्पादन में अजोला की उपयोगिता

संपर्क सूत्रः प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाषः 25843657, www.icar.org.in

मेलिया दुबिया का व्यावसायिक उत्पादन

संग्राम चव्हाण[1,3], **उथप्पा एआर**[2,3], **कृष्ण कुमार जांगिड़**[1], **ए अरुणाचलम**[3] और **के सम्मि रेड्डी**[1]

मेलियासी परिवार का सदस्य पादप मेलिया दुबिया, प्रकृति का एक अनुपम उपहार है। इसके अद्भुत गुणों एवं विविध व्यावसायिक लाभ जैसे उच्च गुणवत्ता युक्त लकड़ी, औषधीय, उर्वरक, कीटनाशक, ईंधन और चारा आदि के कारण इसे भारत में विदेशी औद्योगिक वृक्ष प्रजातियों के स्वदेशी विकल्प के रूप मे देखा जा रहा है। भारत में, इसके 20 वंश और 70 प्रजातियां पायी जाती हैं। यहाँ इसे मालाबार नीम, घोड़ा नीम, महानीम, लिम्बारो, मलाई वेम्बू के नाम से जाना जाता है। भारत में यूकेलिप्टस और पोपलर का प्रभुत्व होते हुए भी इसे लुगदी, पेंसिल, प्लाईवुड, माचिस और पोल व्यवसाय के लिए स्वदेशी प्रजाति के रूप लोकप्रियता मिल रही है। जलवायु परिवर्तन तथा जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए कार्बन स्थिरीकरण, मिट्टी की उर्वराशक्ति में वृद्धि, बंजर भूमि सुधार एवं लकड़ी की मांग की पूर्ति हेतु मेलिया आधारित कृषिवानिकी को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस लेख मे कृषिवानिकी एवं जनजागरण की दृष्टि से किसानों द्वारा मेलिया दुबिया की पूर्ण क्षमता का उपयोग कर अधिक आर्थिक लाभ कमाने हेतु अनुसंधान आधारित उचित मानकों एवं कृषि तकनीकों का एकीकृत समुच्य प्रदान किया गया है।

मेलिया दुबिया एक विस्तृत, सुंदर, तेजी से सीधा बढ़ने वाला बेलनाकर वृक्ष है। पूर्ण विकसित वृक्ष की ऊंचाई साधारणत: 20-25 मीटर तथा तने का घेरा 120-150 सें.मी. होता है। यह पर्णपाती से अर्ध-सदाबहार प्रवृति का पादप है। मेलिया दुबिया की उपयोगिता और औद्योगिक स्वीकार्यता का अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के किसानों ने कृषि वानिकी के विभिन्न स्वरूपों मे सफलतापूर्वक अपनाया है।

मेलिया दुबिया मौलिक रूप से भारत में पश्चिमी घाट के कुछ हिस्सों में पाया जाता है। यह सिक्किम हिमालय, ऊपरी असोम, खासी की पहाड़ियां, ओडिशा, उत्तरी बंगाल, दक्कन पठार और दक्षिणी भारत के छोटे इलाकों में 600 से 1,800 मीटर तक की ऊंचाई पर पाया जाता है।

जलवायु एवं मिट्टी

मेलिया दुबिया आदर्श रूप से 30-35 डिग्री सेल्सियस के बीच अधिक नमी वाले क्षेत्रों में पनपता है, जहां हर साल 1000 मि.मी. से अधिक बारिश होती है। वृक्षों की बेहतर वृद्धि, मिट्टी की गहराई (कम से कम 1.5 मीटर), संरचना, सरंध्रता, जल निकासी और

सारणी: मेलिया दुबिया उत्पादन का आर्थिक विश्लेषण

क्र.सं.	उपयोगिता	जीवन चक्र (वर्ष)	वृक्ष घनत्व (वृक्ष/है.)	जैवभार (टन/है.)	मूल्य (रु./टन)
1.	जैवभार	2-3	2500 - 4444	150-250	3000-3500
2.	प्लाईवुड	6-7	200-500	80-150	5000-7000
3.	गूदा	3-4	500-2500	120-200	4000-4500
4.	लकड़ी	10 से ऊपर	200 से कम	15-18 सीएफटी	350-500 प्रति सीएफटी

[1]भाकृअनुप-राष्ट्रीय अजैविक तनाव प्रबंधन संस्थान, बारामती, पुणे, महाराष्ट्र-413115; [2]भाकृअनुप-केंद्रीय तटीय कृषि अनुसंधान संस्थान, एला, गोवा-403402; [3]भाकृअनुप-केंद्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झाँसी, उत्तर प्रदेश-284003

मेलिया दुबिया का अंतर फसल के रूप में उपयोग

मिट्टी की नमी धारण क्षमता पर निर्भर करती है। अत्यधिक कम तापमान एवं पाला प्रभावित क्षेत्रों में अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है जहां पाला मेलिया के युवा पौधों के लिए हानिकारक है। हाल ही में यह देखा गया है कि जब मेलिया को उत्तरी क्षेत्र जैसे कि बुन्देलखण्ड और राजस्थान के क्षेत्रों में लगाया जाता है, तो सर्दी के मौसम में उच्च तापमान के कारण धूप लगने से तना फट जाता है। इसके लिए उदासीन या थोड़ी क्षारीय (पीएच 6.5-7.5) लाल-दोमट, जलोढ़ और काली-दोमट मिट्टी अनुकूल है।

पादप प्रवर्धन तकनीक

मेलिया दुबिया का प्रसार मुख्य रूप से बीज और वानस्पतिक प्रवर्धन के माध्यम से होता है।

बीज द्वारा: ताजा फलों के संग्रहण के बाद गूदा निकालकर रात भर पानी में भिगोया जाता है। फिर बोरे में रगड़कर पानी से अच्छी तरह धोकर बीज निकालतें हैं। बीजों को बुआई से पूर्व उपचारित करने के लिए गोबर के घोल में 36-48 घंटे तक भिगोने से 50-60% का उच्चतम अंकुरण प्राप्त होता है। बीज 30 दिनों में अंकुरित होने लगते हैं और लगभग 90 दिनों के बाद, चार पत्ती अवस्था में अंकुरित पौधों को पॉलीबैग में स्थानांतरित किया जाता है।

मिनी-क्लोनल तकनीक

इस तकनीक का उपयोग उच्च उत्पादकता एवं गुणवत्तायुक्त रोपण पौध के उत्पादन के लिए किया जाता है। इस विधि से सामान्यतः 1 वर्ग मीटर क्षेत्र से प्रतिवर्ष 5000 पौधे उत्पादित किये जा सकते हैं। भारत में, वन महाविद्यालय एवं अनुसंधान संस्थान, मेट्टुपालयम और भाकृअनुप-केंद्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झांसी ने मेलिया दुबिया के लिए मिनी-क्लोनल तकनीक को सफलतापूर्वक मानकीकृत किया है।

उत्कृष्ट क्लोनल पौधों को 15 सें.मी. × 10 सें.मी. पर रेत की क्यारी में हरित छाया जाली में उचित सिंचाई सुविधा के साथ लगाया जाता है। पौधों को सूक्ष्म पोषक तत्वों के मानक मिश्रण द्वारा पोषित किया जाता है। शीर्षस्थ कलमों (5-7 सें.मी.) को 2% कार्बेण्डाजिम घोल से उपचारित करने के बाद निचले भाग को आईबीए / 1000-2000 पीपीएम पाउडर फॉर्मूलेशन से उपचारित कर, धुंध गृह में नियंत्रित परिस्थितियों (30-32 डिग्री सेल्सियस तापमान और 80% की सापेक्ष आर्द्रता के साथ) में 20-30 दिनों तक रखते हैं।

रोपण तकनीक

स्थान चयन एवं तैयारी: सामान्यतः मृदाजनित कीट और रोग की आशंका रहित भूमि में गर्मियों (अप्रैल-मई) के दौरान 60×60×60 सें.मी. का एक गड्ढा खोदकर मानसून के ठीक पहले 5-10 किलोग्राम गोबर की खाद + 100-150 ग्राम नीम की खली + 50 ग्राम डीएपी से भर देना चाहिए।

रोपण: मेलिया दुबिया को भूमि की जोत का आकार, अंतिम उत्पाद के उपयोग, अंतरफसल के प्रकार, पानी की उपलब्धता और किसान की आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग ज्यामिति में लगाया जाता है। सामान्यतः वृक्षारोपण करते समय, 6 महीने पुराने पौधों को गड्ढों में लगाया जाता है। दीमक के संक्रमण को रोकने के लिए गड्ढों में 2 मिलीलीटर क्लोरोपाइरीफॉस डालें।

मेलिया दुबिया की मिनी कटिंग तकनीक

सारणी 1.: मेलिया दुबिया के लिए मानक रोपण ज्यामिति

रोपण का प्रकार	पौधे से दूरी (मीटर)	वृक्ष घनत्व (प्रति है. वृक्ष)
कृषिवानिकी	5×4	500
	5×5	400
	6×6	277
	8×2	625
ब्लॉक वृक्षारोपण	3×3	1111
	2.5×2.5	1600
मेड़ रोपण	2 मीटर दूर	200
	4 मीटर दूर	100
	टेढ़ा-मेढ़ा (जिग-जैग) रोपण	300-400
जैवभार के लिए लघु चक्रण	1.5×1.5	4500

सिंचाई एवं उर्वरक प्रयोग

पेड़ों की वृद्धि मुख्य रूप से सिंचाई और उर्वरक की उपलब्धता से प्रेरित होती है। ग्रीष्म काल में हर 10-15 दिनों में सिंचाई करने पर पेड़ अच्छी प्रतिक्रिया देता है। वर्षा की अनियमित स्थिति में, पानी के सटीक उपयोग के लिए ड्रिप सिंचाई (प्रतिदिन 2 घंटे) की अनुशंसा की जाती है। वर्ष में दो बार प्रति पेड़ 25-50 ग्राम एन. पी. के मिश्रण का प्रयोग वृद्धि को तीव्र करता है। तीसरे वर्ष से उर्वरक की दर 100 ग्राम/पेड़ तक बढ़ाई जानी चाहिए।

सारणी 2.: मेलिया दुबिया की नर्सरी और वृक्षारोपण में कीट एवं रोगों का नियंत्रण			
क्र.सं.	**कीट/रोग**	**क्षति की प्रकृति एवं लक्षण**	**प्रबंधन तकनीक**
		कीट	
1.	लाल मकड़ी घुन (टेट्रानाइकस यूर्टिका)	• पीले धब्बों का विस्तार • पत्तियों का किनारों से सूखना	• संक्रमित पत्तियों को हटाना • नीम का तेल (10%) उपयोग करें • 2.5 मि.ली. डाइकोफॉल / लीटर पानी का छिड़काव
2.	विशालकाय लूपर (एस्कोटिस सेलेनारिया)	• पत्तियों का झड़ना और अंकुरों की वृद्धि रुक जाना। • वैकल्पिक आतिथेय: प्रोसोपिस और नीम	• 0.076% डाइक्लोरवास का छिड़काव • वयस्कों के नियंत्रण हेतु प्रकाश जाल की स्थापना।
3.	लता कीट	• क्षतिग्रस्त पत्तियों में अनियमित, पीले रंग के धब्बेदार क्षेत्र	• 5% नीम गिरी अर्क का प्रयोग करें • 1.5 मि.ली./लीटर इमिडाक्लोप्रिड का छिड़काव।
		रोग	
4.	पत्ती का झुलसा रोग (कोलेटोट्राइकम एसपीपी.)	• धब्बे छोटे, भूरे रंग के पीले धब्बों से घिरे होना • संक्रमित पत्तियां सिकुड़कर विकृत हो जाती हैं	• प्रभावित शाखाओं की छंटाई • बोर्डो मिश्रण / 1%, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.125% या कार्बेण्डाजिम 0.2% का छिड़काव
5.	तना एवं टहनी का झुलसा रोग (कॉर्टिसियम सैल्मोनोकोलर)	• तरल पदार्थ रिसाव के साथ छाल का फूलना • सामान्यत: शाखाएँ पीली पड़ जाती हैं	• प्रभावित हिस्से की छंटाई • बोर्डो मिश्रण और मिश्रण का उपयोग 1% की दर से करें
6.	गैनोडर्मा जड़ सड़न (गैनोडर्मा ल्यूसिडम)	• पानी का तनाव, पर्ण पर एक तरफा धब्बों का विस्तार	• बाविस्टिन / 0.1% से ड्रेंचिंग • प्रभावित पौधों को हटाना • ट्राइकोडर्मा का प्रयोग

कटाई एवं छँटाई प्रबंधन

सीधी, स्पष्ट और गांठरहित उच्च गुणवत्ता वाली लकड़ी प्राप्त करने के लिए कटाई एवं छंटाई एक महत्वपूर्ण क्रिया है। उचित कटाई एवं छंटाई प्रबंधन से वृक्षारोपण में पेड़ की इष्टतम दूरी निर्धारित होती है। जब पादप 2-3 मीटर की ऊंचाई तक पहुंच जाएं तो पार्श्व शाखाओं की छंटाई शुरू कर देनी चाहिए। उच्च-घनत्व रोपण (500 से 5000 से अधिक पेड़ हैक्टर-1) के अंतर्गत, पार्श्व वृक्ष विकास को बढ़ाने तथा प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए वैकल्पिक पेड़ को हटाकर वृक्षारोपण के दूसरे, चौथे, छठे और आठवें वर्ष में यांत्रिक छंटाई प्रबंधन की अनुशंसा की जाती है।

कृषिवानिकी प्रणाली

अपने विविध गुणों के कारण यह किसानों की आजीविका सुरक्षा बढ़ाने की दृष्टि से कृषि वानिकी के अंतर्गत सर्वोत्तम स्वदेशी वृक्ष प्रजाति है। वृक्षों के मध्य अधिक दूरी होने से इसके साथ-साथ दक्षिणी भारत में मूंगफली, मिर्च, हल्दी, उड़द, पपीता, केला, तरबूज और गन्ना, जबकि उत्तरी भारत में दालें, गेहूं, हल्दी, बरसीम और जौ को अंतर-फसल के रूप में उत्पादन किया जा सकता है। लेकिन आजकल, मेलिया को आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गुजरात और कर्नाटक में चंदन बागानों में सबसे लोकप्रिय मेजबान वृक्ष प्रजाति माना जाता है और इसे वैकल्पिक पंक्ति या वृक्ष के रूप में लगाया जाता है।

मेलिया दुबिया व्यावसायीकरण हेतु बहुपयोगी

उपज और लाभ

यह घरेलू तथा वैश्विक बाजारों में आर्थिक लाभ की संभावनाओं को आकर्षित कर रहा है। उच्च घनत्व युक्त मेलिया दुबिया (500-4444 के वृक्ष घनत्व के साथ) से 3-5 वर्ष की उम्र में 150-250 टन हैक्टर का जैवभार प्राप्त किया जा सकता है। पेड़ों का चक्रण 3 से 10 वर्ष तक का होता है जो इसकी उपयोगिता पर निर्भर करता है।

वर्तमान में, मेलिया को 50-120 सें.मी. की परिधि वाले पेड़ों के लिए 7000/- रुपये प्रति टन और 120 सें.मी. से अधिक की परिधि वाले पेड़ों के लिए 370 रुपये प्रति घन फीट मिलते हैं। 14 सें.मी. डीबीएच के न्यूनतम आकार वाला पेड़ कागज, माचिस और लिबास उद्योग के लिए न्यूनतम 4000-5000 रुपये प्रति टन की दर पर बिक्री योग्य है। मेलिया दुबिया आधारित कृषि वानिकी के अर्थशास्त्र की समीक्षा की गई और पाया गया कि देश के विभिन्न हिस्सों में लाभप्रदता 24,000-137,500 रुपये प्रति एकड़ प्रति वर्ष है।

मेलिया दुबिया का कृषि वानिकी प्रणाली में अन्य फसलों के साथ उत्पादन, उचित अनुशंसित मानक एवं एकीकृत प्रबंधन तकनीक द्वारा किसानों को पारंपरिक फसल प्रणालियों के पुनर्जीवन कर सकते हैं। यह उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे माल के सतत आवंटन में मदद कर सकता है। ■

दार्जिलिंग संतरे की फलमक्खी से सुरक्षा

नताशा गुरुड़, सुजित सरकार और **चन्दन कुमार**

भारत के बागान में 50% फलों का उत्पादन नीबूवर्गीय क्षेत्र से होता है। वर्तमान समय में इसके उत्पादन से संबंधित समस्याओं की बात करें तो संतरे एवं नीबूवर्गीय फल पर कई तरह के कीटों, फफूंद तथा पोषक तत्वों की कमी के कारण रोग फैलने, फलों के उत्पादन में कमी और फल बागानों में फल सड़ने की समस्या बढ़ती जा रही है। फल बागानों में फलों को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाने वाला प्रमुख कारक फलमक्खी को ही माना गया है। फल जब हरे से नारंगी रंग के होने की अवस्था में होता है, उसी समय फलमक्खी इसे सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाती है। मादा मक्खी संतरे के फलों की छाल के नीचे अंडे देती है। इन अंडों से बनने वाली इल्लियां फलों के गूदे वाले भाग को खाती हैं। मादा फलमक्खी फल के अंदर जाने के लिए फल के छिलके के ऊपरी भाग पर छिद्र करती है। इसी छिद्र द्वारा सूक्ष्म रोगाणु फलों के अंदर जाकर संक्रमण फैलाता है। कुछ समय बाद फल आधा या पूरा सड़कर गिर जाता है। इस मक्खी के नियंत्रण एवं प्रबंधन के लिए आवश्यक प्रयास करने की जरूरत है जिससे फलों का गिरना एवं नुकसान जैसी समस्याओं से निजात पाया जा सके।

संतरा उत्पादन के लिए भारत का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र एक प्रमुख केन्द्र माना जाता है। ऐसे तो भारत के विभिन्न भागों में जैसे कि नागपुर संतरा, कुर्ग संतरा, खासी संतरा, सिक्किम संतरा का उत्पादन होता है। लेकिन पश्चिम बंगाल के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित कालिम्पोंग, दार्जिलिंग तथा इसके आसपास के क्षेत्र दार्जिलिंग संतरे का उत्पादन, गुणवत्ता, आकार, रंगरूप में एक विशेष स्थान रखता है।

भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, कालिम्पोंग

फलमक्खी के कारण फल का गिरना एवं नुकसान

पश्चिम बंगाल के उत्तर-पूर्वी भाग कालिम्पोंग, दार्जिलिंग जिलों में फलमक्खी एक हानिकारक कीट है जो फल तोड़ने से पूर्व फल गिरने का कारण बनती है। जब दार्जिलिंग संतरा, सिक्किम संतरे, मौसंबी, रंगपुर लाइन, रफ लेमन और किन्नू, मैंडरिन के गिरे हुए फल का परीक्षण किया गया तो पाया गया कि अधिकांश फल, फलमक्खी के कारण ही संक्रमित होकर खराब हुए हैं। फलों के गिरने का कारण फल मक्खी की प्रजाति चीनी फल मक्खी (बैक्ट्रोसेरा मिनैक्स)थी, जो चीन, भूटान, नेपाल, भारत के सिक्किम और पश्चिम बंगाल के क्षेत्रों में पायी जाती है।

नियंत्रण एवं प्रबंधन

- सफल बागवानी फसल प्रबंधन तरीके का उपयोग करना, साफ-सफाई का निरंतर ध्यान रखना और गिरे हुए फलों को प्रतिदिन उठाकर बागान से बाहर करना।
- गिरे फलों का सामुदायिक संग्रहण करना चाहिए क्योंकि यह कीट आसपास के क्षेत्र में उड़कर दूसरी जगह के फलों को संक्रमित कर सकती हैं। इसलिए ग्रसित फलों को बगीचों से बाहर कम से कम 60 सें.मी. अन्दर गड्डा खोदकर मिट्टी से अच्छी तरह से ढक देना चाहिए।
- फल बागानों के अन्दर एवं चारों ओर मिट्टी को खुरचकर प्यूपा को बाहर निकालकर नष्ट कर देना चाहिए।
- जुलाई के प्रथम सप्ताह से एक महीने के अंतराल पर कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यूपी (0.1%) का छिड़काव करने पर संतरे पकने की अवस्था से पहले गिरावट को कम दर्ज किया गया है।
- जब फल अधपके या हरे रंग से नारंगी रंग होने की अवस्था में हों तब फलों पर बैग लगाकर मक्खी के प्रकोप से बचा जा सकाता है।

फल के अंदर लार्वा का प्रकोप

समुद्र तल से 323-1610 मीटर की ऊँचाई से गिरे हुए 600 फलों के नमूनों का अध्ययन किया गया। इनमें से औसतन 50.83% फलों के नमूने मक्खियों द्वारा संक्रमित पाए गए। पिछले 4-5 वर्षों से फल गिरावट की घटना बढ़ गई है जिससे 55-65% तक नुकसान हुआ है। वहीं पश्चिम बंगाल के तकदाह में एक अप्रबंधित संतरा के बागान में कटाई के मौसम में प्रकोप 75.18% तक पहुँच गया था।

अध्ययन के अनुसार पता चलता है कि इस प्रजाति की मक्खी ने उच्च समशीतोष्ण दक्षिणी युन्नान गुइझोऊ पठार में उत्पन्न होकर चीन जलमार्ग के माध्यम से अपनी लम्बी दूरी तक उड़ने की क्षमता के कारण नेपाल, भूटान, भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के फल बागानों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

पेट्रीप्लेट में एकत्रित लार्वा

लार्वा द्वारा फल के गूदे का नुकसान

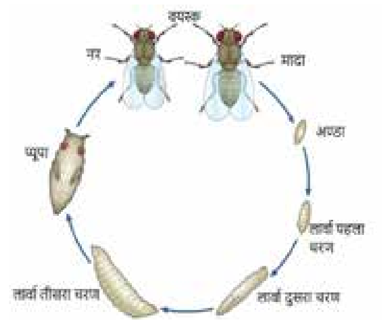

फलमक्खी का जीवन चक्र

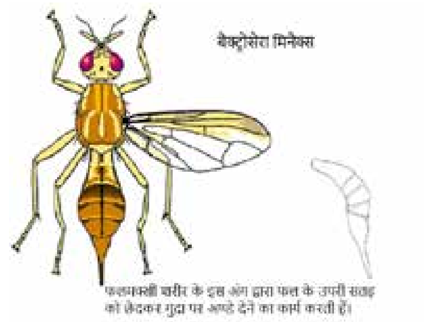

बैक्ट्रोसेरा मिनैक्स फलमक्खी

फलमक्खी की प्रजाति, जीवनचक्र, लिंग निर्धारण एवं प्रजनन

बागवानी फसलों पर बड़ी संख्या में कीटों का आक्रमण पौधे में फूल लगने की शुरुआती अवस्था से लेकर फल तोड़ने तक निरंतर होता रहता है। क्षेत्रीय स्तर पर बहुत से बागानों का अध्ययन करने के बाद पता लगाया गया कि फलमक्खी की बहुत सी प्रजातियाँ पाई जाती हैं जो संतरे के उत्पादन में कमी का कारण बनती हैं। फलमक्खी की विभिन्न प्रकार की प्रजातियां हैं जैसे- बैक्ट्रोसेरा मिनैक्स, डिप्टेरा स्ट्रेटिओमाईडी, ओथ्रिस मैटरनल, मेडिटरेनीयन फलमक्खी, बैक्ट्रोसेरा डोर्सालिस, जापानी फल मक्खी (बैक्ट्रोसेरा त्सुनेओनिस), ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर आदि।

मक्खी का जीवनचक्र 4 चरणों में विभाजित किया गया है- अंडा, लार्वा, प्यूपा और वयस्क। वयस्क मादा मक्खी फल पकने से कुछ समय पहले की अवस्था में होने पर इसके छिलके के नीचे अंडे देती है। इन अंडों से 2-3 दिनों में इल्लियां (लार्वा) बाहर आती हैं और 5-6 दिनों तक फल के गूदा भाग को खाती हैं। 1-2 सप्ताह पौधे के नीचे जमीन में प्यूपा पोषित होता है और वयस्क कीट मिट्टी के अन्दर से बाहर निकलते हैं। इसका जीवनकाल औसतन 40 से 50 दिनों का होता है। फलमक्खी में नर आमतौर पर छोटे होते हैं और उनका पेट गहरा और अधिक गोल होता है। वहीं मादा मक्खी तुलनात्मक रूप से बड़े आकार, पेट नीचे की ओर इंगित और लम्बा होता है। नर मक्खी के शरीर पर धारियां मादा मक्खी की तुलना में कम और पतली पाई जाती हैं। नर के जननांग की संख्या दो वहीं मादा मक्खी के जननांग की संख्या एक पाई जाती है।

प्रजनन के लिए नर मादा के सामने एक व्यावहारिक स्वरूप को दिखाता है। नर गीत गाते हुए पंखों को धरातलीय रूप में फैलाकर कंपन करते हुए खुद को उन्मुख करते हैं। इसके तुरंत बाद नर मादा के पेट के पीछे खुद को नीची मुद्रा में रखता है और मादा जननांग को छूता और चाटता है। अंत में नर अपने पेट को सिकोड़कर मादा के साथ संभोग करता है। इसमें लगभग 15-20 मिनट का समय लगता है। इसी क्रम में नर, मादा में वीर्य (शुक्राणु कोशिकाओं) को स्थानांतरित करता है। इसके कुछ समय बाद मादा के शरीर में अंडाणुओं का निर्माण होता है।

उचित प्रबंधन से स्वस्थ उपज

पिछले 5-6 वर्षों से बागवानी फसलों के लिए फलमक्खी एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है। इससे क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फल और सब्जी के विभिन्न प्रकार की किस्मों के उत्पादन में बड़े पैमाने पर कमी को दर्ज किया गया है। वर्तमान में कृषि व्यवसाय से संबंधित लोग, केन्द्र और राज्य स्तर के अनुसंधान संस्थानों को फलमक्खी की बेहतर रोकथाम के विकल्प संबंधित ज्यादा से ज्यादा कार्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए। इससे फल बागान से संबंधित किसान फल उत्पादन को मुख्य उद्योग के रूप में अपनाकर लाभ के साथ भविष्य में फलों का ज्यादा से ज्यादा उत्पादन कर सकेंगे। ■

सेब और मटर में जीवामृत प्रयोग

[1]रंजीत सिंह स्पेहिया, [2]अंकिता धीमान, [2]बंदना धीमान, [3]इंद्र देव और [3]राजेश्वर सिंह चंदेल

वर्ष 2024-25 में राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन के लिए बजट 2,481 करोड़ रुपये है। केंद्रीय बजट 2025-26 ने इसके लिए आवंटन को 516 करोड़ रुपये बढ़ाकर 616.01 करोड़ रुपये कर दिया। यह प्राकृतिक खेती के महत्व के साथ-साथ स्वस्थ पर्यावरण और मनुष्यों के लिए इसे बढ़ावा देने के भारत सरकार के इरादे को दर्शाता है। लेकिन ठंडे रेगिस्तान क्षेत्र में, प्राकृतिक खेती तकनीकों की प्रभावशीलता काफी हद तक सटीक अनुप्रयोग और प्रयोग के समय पर निर्भर करती है। चूंकि ठंडे रेगिस्तानों में, दिन और रात के समय हवा और मिट्टी का तापमान बहुत भिन्न होता है, इसलिए प्राकृतिक खेती के फॉर्मूलेशन विशेषकर जीवामृत को सटीकता के साथ प्रयोग करना चाहिए। कृषि विज्ञान केंद्र, ताबो ने ठंडे रेगिस्तानों में सेब और मटर के लिए जीवामृत के छिड़काव का समय और मात्रा निर्धारित की है।

हिमाचल प्रदेश में स्पीति घाटी एक विशिष्ट ठंडी रेगिस्तानी जलवायु का प्रतिनिधित्व करती है। यहां ऊबड़-खाबड़ भूमि, शुष्क जलवायु और सिंचाई के लिए हिमनदों के पानी पर निर्भरता के कारण कृषि के लिए चुनौतियाँ हैं। इस क्षेत्र की अनूठी परिस्थितियाँ – शुष्क ग्रीष्मकाल और लंबी, ठंडी सर्दियाँ भी खेती के लिए बाधाएँ उत्पन्न करती हैं, जो अधिकांश निवासियों के लिए प्राथमिक आजीविका है।

स्पीति घाटी की शुष्क समशीतोष्ण जलवायु और वर्षा अभाव के कारण हिमनदों का पिघलना सिंचाई का प्राथमिक स्रोत है। हालाँकि, अपर्याप्त बर्फबारी और बढ़ते तापमान के कारण ग्लेशियर कम हो रहे हैं। इससे सिंचाई के लिए पानी की आपूर्ति के लिए संकट और फसल खराब होने का जोखिम उत्पन्न हो रहा है। इसके साथ ही किसानों की आजीविका भी प्रभावित हो रही है। इसके अतिरिक्त स्पीति घाटी के किसान पारंपरिक फसलों से हटकर मटर और सेब जैसी आर्थिक रूप से अधिक लाभदायक लेकिन अधिक जल मांग वाली फसलें उगा रहे हैं। इस बदलाव से सीमित जल संसाधनों के साथ-साथ मिट्टी पर भी दबाव बढ़ता है, जिससे स्थिरता संबंधी समस्याएँ बढ़ती हैं।

रासायनिक उर्वरकों पर पूरी तरह से निर्भरता, अल्पकालिक उत्पादन को बढ़ावा देते हुए, समय के साथ मृदा के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है और साथ ही जल की माँग भी बढ़ा सकती है। इस समस्या को क्षेत्र में मृदा की स्वभाविक रूप से कम उर्वरता द्वारा और भी जटिल बना दिया गया है। पर्याप्त खाद्य उत्पादन और न्यूनतम उत्पादन लागत तथा रोजगार सृजन के बीच संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता है। किसानों को उच्च लागत का प्रबंधन करते हुए उत्पादकता बनाए रखने की चुनौती का सामना करना पड़ता है।

जलवायु के लिहाज से, पूरा लाहौल और स्पीति जिला ठंडे रेगिस्तान की श्रेणी में आता है। यह उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों और फलों की खेती के लिए उपयुक्त है। यहां कृषि का मौसम संक्षिप्त है, जो अप्रैल से

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रमुख, [2]सहायक प्रोफेसर, कृषि विज्ञान केंद्र, लाहौल एवं स्पीति-II, ताबो, हिमाचल प्रदेश; [3]प्रोफेसर, डॉ. वाई.एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश

ठंडे रेगिस्तानों के लिए प्राकृतिक खेती

अकार्बनिक कृषि प्रौद्योगिकियों के साथ जौ जैसी पारंपरिक फसलों से सेब और मटर जैसी नकदी फसलों की ओर स्थानांतरित होने से ठंडे रेगिस्तानों में मिट्टी और पानी जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव पड़ा है, क्योंकि इन्हें बड़ी मात्रा में पानी और पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, प्राकृतिक खेती कृषि पद्धति का एक समावेशी रूप है, जहां प्राकृतिक आदानों के साथ मृदा को स्वस्थ रखने पर अधिक ध्यान दिया जाता है, ताकि यह न्यूनतम बाहरी आदानों के साथ फसल उत्पादन का समर्थन कर सके। प्राकृतिक खेती का उद्देश्य एक आत्मनिर्भर, पुनर्योजी कृषि प्रणाली बनाना है जो प्रकृति के साथ सदभाव में काम करती है। यह दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य, जैव विविधता और पर्यावरणीय स्थिरता पर केंद्रित है। प्राकृतिक खेती के सबसे महत्वपूर्ण घटक बीजामृत, जीवामृत, आच्छादन और व्हाप्सा हैं। इनमें से जीवामृत मुख्य घटक है। इसे बार-बार बनाकर प्रयोग किया जाता है। इस कारण यहां सेब और मटर की फसल में इसकी संख्या और प्रयोग के समय पर चर्चा की गई है।

अक्टूबर तक चलता है, क्योंकि बाकी महीने फसल उत्पादन के लिए बहुत ठंडे होते हैं। अक्टूबर से अप्रैल तक वर्षा मुख्य रूप से बर्फबारी के रूप में होती है। आश्चर्यजनक रूप से, कोई भूजल का उपयोग नहीं किया जाता है, और फिर भी क्षेत्र ग्लेशियर के पिघले पानी से प्राप्त धाराओं और नदियों के माध्यम से 100% सिंचाई प्राप्त करता है।

जीवामृत मिश्रण हेतु सामग्री

जीवामृत मिश्रण बनाने की तैयारी

सारणी 1: स्पीति में महत्वपूर्ण फसलें और क्षेत्र:

फसल	क्षेत्रफल (हैक्टर में)
जौ	500.0
गेहूँ	8.0
मटर	848.0
आलू	2.0
सेब	664.0
खुमानी	9.0
अन्य फल (सूखा आलू बुखारा)	1.98

स्पीति में गर्मियों में और सर्दियों के दौरान भी दिन के समय अत्यधिक उच्च पराबैंगनी सूचकांक 7 तक होता है। इसका अर्थ है कि सुरक्षा की आवश्यकता है क्योंकि इससे त्वचा को नुकसान पहुंचता है जो सनबर्न का कारण बन सकता है। वर्ष 2024 के दौरान, किसानों को सेब के लिए 60-100 रुपये प्रति किलोग्राम और मटर के लिए 65-150 रुपये प्रति किलोग्राम का उच्च मूल्य मिला। उच्च मूल्य निर्धारण स्पीति घाटी की उपज की गुणवत्ता मूल्य और किसानों के लिए अच्छी कमाई की गुंजाइश को दर्शाता है।

सेब में जीवामृत का छिड़काव

वर्तमान में अधिकतम खेती रसायन आधारित है (या तो रासायनिक उर्वरक या कीट और रोग नियंत्रण के लिए या दोनों का उपयोग किया जा रहा है) जो खेती के भविष्य के निर्वाह के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि यहां का क्षेत्र पर्यावरण-संवेदनशील है। पानी की उपलब्धता पूरी तरह से ग्लेशियर के पिघलने पर निर्भर है और इसलिए हर साल सर्दियों में होने वाली बर्फबारी के आधार पर इसमें उतार-चढ़ाव होता रहता है।

स्थानीय पशुओं के मल-मूत्र से जीवामृत तैयार करना

जीवामृत एक प्राकृतिक उर्वरक है। इसका उपयोग प्राकृतिक खेती में किया जाता है। यह देसी गाय के गोबर, देसी गाय के मूत्र, दाल का आटा, गुड़ और मिट्टी के मिश्रण से बनाया जाता है। जीवामृत को 10 लीटर पानी में 2 कि.ग्रा. जुमो (याक और स्थानीय गाय के बीच का संकर) या डिमो (मादा याक) या कोई भी उपलब्ध गाय का गोबर, 2 लीटर जुमो या डिमो (मादा याक) या कोई भी उपलब्ध गाय का मूत्र, 500 ग्राम दाल का आटा और 500 ग्राम गुड़ मिलाकर तैयार किया जाता है। मिश्रण को अच्छी तरह से हिलाया जाता है और 15-20 दिनों के लिए किण्वन के लिए छोड़ दिया जाता है।

कुल मिलाकर, जीवामृत प्राकृतिक कृषि पद्धतियों का एक प्रमुख घटक है, जो एक स्वस्थ, टिकाऊ और उत्पादक कृषि प्रणाली बनाने में मदद करता है।

जीवामृत मिट्टी के स्वास्थ्य, पर्यावरणीय स्थिरता और लागत-प्रभावशीलता को बढ़ावा देकर अन्य उर्वरकों की तुलना में कई लाभ प्रदान करता है, जिससे यह प्राकृतिक कृषि पद्धतियों का एक मूल्यवान घटक बन जाता है।

जीवामृत का प्रयोग

ठंडे रेगिस्तानों में जीवामृत के प्रयोग से मिट्टी के स्वास्थ्य और पौधों के विकास

सारणी 2: जीवामृत के विविध लाभ	
विवरण	**लाभ**
मृदा स्वास्थ्य	यह माइक्रोबियल गतिविधि को बढ़ावा देकर, मृदा की संरचना में सुधार करके और कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाकर, मृदा के स्वास्थ्य को बढ़ाता है। साथ ही यह एक जीवित मृदा पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देता है।
पर्यावरणीय प्रभाव	प्राकृतिक और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों से निर्मित, यह पर्यावरण के अनुकूल है और टिकाऊ कृषि पद्धतियों में मददगार है।
पोषक तत्व उपलब्धता	पोषक तत्वों का एक संतुलित मिश्रण प्रदान करता है और प्राकृतिक पोषक चक्र का समर्थन करता है। इससे पौधों को पोषक तत्वों का एक स्थिर और क्रमिक दोहन होता है।
लागत-प्रभावशीलता	लागत प्रभावी है क्योंकि इसमें गाय के गोबर, मूत्र, गुड़ और दाल के आटे जैसे आसानी से उपलब्ध उत्पादों का उपयोग किया जाता है। यह महंगे रासायनिक आदानों की आवश्यकता को कम करता है।
पौधों का स्वास्थ्य	स्वस्थ मृदा पारिस्थितिकी तंत्र और संतुलित पोषक आपूर्ति को बढ़ावा देकर कीटों और रोगों के प्रति पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।
स्थिरता	प्राकृतिक मृदा प्रक्रियाओं को बनाए रखने और बाहरी आदानों पर निर्भरता को कम करके मृदा की दीर्घकालिक उर्वराशक्ति और सतत कृषि को बढ़ावा देता है।
जैव विविधता	मृदा में जैव विविधता को प्रोत्साहित करता है, लाभकारी सूक्ष्मजीवों को बढ़ावा देता है।
जल संरक्षण	मृदा की संरचना में सुधार करता है, जलधारण क्षमता को बढ़ाता है और बार-बार सिंचाई की आवश्यकता को कम करता है।

स्थानीय याक

के लिए इसके लाभों को अधिकतम करते हुए अनुकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों को अपनाना शामिल है। अत्यधिक ठंड जीवामृत के प्रभाव को कम कर सकती है। इससे लाभों को संचालित करने वाली माइक्रोबियल गतिविधि धीमी हो सकती है या बहुत कम तापमान में निष्क्रिय हो सकती है। अत्यधिक ठंड की स्थिति में जीवामृत की प्रभावशीलता में सुधार के लिए लाभकारी रोगाणुओं को सक्रिय और कार्यात्मक बनाए रखने के लिए कुछ प्रणालियों को अपनाना शामिल है। ठंडे रेगिस्तानों में जीवामृत का प्रभावी ढंग से प्रयोग करने के चरण हैं:

सारणी 3: जीवामृत पर ठंडी रेगिस्तानी जलवायु का प्रभाव एवं समाधान		
गतिविधि	**ठंडी जलवायु का प्रभाव**	**समाधान**
माइक्रोबियल गतिविधि	जीवामृत में लाभकारी रोगाणु कम सक्रिय हो सकते हैं या अत्यधिक ठंड में निष्क्रिय हो सकते हैं। इससे मृदा की उर्वराशक्ति और पौधों के स्वास्थ्य को बढ़ाने में इसकी प्रभावशीलता कम हो जाती है।	सुनिश्चित करें कि प्रयोग से पहले जीवामृत अच्छी तरह से किण्वित हो। इसे गर्म, छायादार क्षेत्र में किण्वित करें और माइक्रोबियल गतिविधि को बढ़ावा देने के लिए इसे नियमित रूप से हिलाएं। यदि संभव हो, तो रोगाणुओं को अधिक प्रभावी ढंग से बढ़ाने के लिए किण्वन अवधि को थोड़ा बढ़ा दें। प्रयोग से पहले जीवामृत को गुनगुने पानी में घोल लें। यह रोगाणुओं पर ठंडे तापमान के अचानक झटके को रोकने में मदद करता है और उनकी गतिविधि को बढ़ाता है।
प्रयोग का समय	इसका प्रयोग विभिन्न फसल अवस्थाओं के दौरान किया जाना चाहिए, लेकिन ठंडे रेगिस्तान में दिन के समय प्रयोग बहुत फायदेमंद है। यह रोगाणुओं को प्रभावी ढंग से स्थापित होने और कार्य करने में प्रभावी है।	जीवामृत को दिन के सबसे गर्म हिस्से में प्रयोग करें। आमतौर पर मध्य सुबह या दोपहर के आसपास, तापमान अपेक्षाकृत अधिक होता है। तापमान कम हो तो सुबह या देर शाम को प्रयोग करने से बचें। कम माइक्रोबियल गतिविधि की आपूर्ति के लिए सर्दी के महीनों के दौरान जीवामृत को अधिक बार प्रयोग करें। इससे मृदा में लाभकारी रोगाणुओं और पोषक तत्वों की निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित होती है।
भंडारण	ठंडे रेगिस्तानों में जीवामृत का भंडारण भी महत्वपूर्ण है ताकि इसे लंबे समय तक उपयोगी बनाए रखा जा सके।	सूक्ष्मजीवी गतिविधि बनाए रखने के लिए कंटेनरों को गर्म, छायादार क्षेत्र में रखें।
मृदा की तैयारी	ठंडे रेगिस्तानों में मिट्टी की जल-तापीय व्यवस्था बहुत तेजी से बदलती है, जिससे जीवामृत का अवशोषण कम हो जाता है।	जीवामृत प्रयोग करने से पहले, मृदा में गर्माहट बनाए रखने के लिए जैविक गीली घास, जैसे पुआल या पत्तियों से ढक दें। इससे माइक्रोबियल गतिविधि के लिए अधिक अनुकूल वातावरण बनाने में मदद मिलती है। जीवामृत प्रयोग करने से पहले, सुनिश्चित करें कि मृदा जमी हुई न हो और रोगाणुओं को पनपने में मदद करने के लिए उसमें थोड़ी गर्माहट हो।
मल्चिंग	ठंडे रेगिस्तानों की चरम मौसमी परिस्थितियों में मिट्टी की जल-तापीय व्यवस्थाएं तेजी से बदलती हैं।	"थेमा" जैसी स्थानीय उपलब्ध घासों के साथ मल्चिंग मिट्टी की हाइड्रो-थर्मल व्यवस्था को नियंत्रित करने में मदद करती है जिससे माइक्रोबियल गतिविधि के लिए अधिक अनुकूल वातावरण तैयार हो सके।

सारणी 4: शीत मरुस्थल में सेब और मटर में जीवामृत प्रयोग का समय

जीवामृत प्रयोग का समय	सेब की फसल अवस्था	मटर की फसल अवस्था	मात्रा/बेसिन (200 लीटर ड्रम में 20 लीटर)	पर्णीय छिड़काव (200 लीटर ड्रम में 10 लीटर)
मार्च	सुषुप्तावस्था और सिल्वर टिप अवस्था की शुरुआत	–	–	–
अप्रैल	सिल्वर टिप अवस्था, ग्रीन टिप अवस्था	पहली फसल: बुआई के 15 दिनों बाद	–	–
	आधा इंच हरा	वनस्पति वृद्धि अवस्था	10 %	5%
मई	तंग गुच्छे, गुलाबी कली	वनस्पति वृद्धि अवस्था	10 %	5%
	पूर्ण खिलना, पंखुड़ी का गिरना और फल लगना	फूल आने की अवस्था और फल लगना	10 %	5%
जून	फल विकास अवस्था	फली विकास अवस्था	10 %	(फूल खिलने की अवधि के दौरान कोई पर्णीय छिड़काव नहीं)
	फल विकास अवस्था	फली विकास अवस्था और तुड़ाई	10 %	5%
जुलाई	फल विकास अवस्था	दूसरी फसल: बुआई के 15 दिनों बाद	10 %	5%
	फल विकास अवस्था	वनस्पति वृद्धि अवस्था	10 %	5%
अगस्त	फल विकास अवस्था	वनस्पति वृद्धि अवस्था	10 %	5%
	फल विकास अवस्था	फूल आने की अवस्था और फल लगना	10 %	5%
सितंबर	फल विकास अवस्था	फली विकास अवस्था	10 %	5%
	तुड़ाई	फली विकास अवस्था और तुड़ाई	10 %	सेब में 5% छिड़काव
अक्टूबर	तुड़ाई	तुड़ाई	–	(मटर में फूल खिलने की अवधि के दौरान कोई पर्णीय छिड़काव नहीं)

सेब और मटर में जीवामृत के प्रयोग

सबसे महत्वपूर्ण कार्य ठंडे रेगिस्तान की मुख्य नकदी फसलों-सेब और मटर, के लिए जीवामृत का प्रयोग (मिट्टी को भिगोना और पत्तियों पर छिड़काव करना) का समय है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ठंडे रेगिस्तान में फसल का मौसम भारत के सभी कृषि-जलवायु क्षेत्रों से बिल्कुल अलग है। इसलिए, विभिन्न फसल चरणों के दौरान प्रयोग के सही समय का ज्ञान होना आवश्यक है। कृषि विज्ञान केंद्र, ताबो ने सेब और मटर में जीवामृत के प्रयोग का समय निर्धारित किया है। इससे किसानों को फसल की आवश्यकता के अनुसार जीवामृत की तैयारी की योजना बनाने में मदद मिलेगी।

मटर की तुड़ाई

घनजीवामृत को सेब के पौधों में मार्च माह में पौधे के सुषुप्ति से बाहर आने के बाद 1.5 टन /हैक्टर या 3.5 कि.ग्रा./ पौधा की दर से प्रयोग किया जाता है, जबकि मटर के पौधों में इसे नवम्बर माह से पहले खेत की तैयारी के समय डाला जाता है।

*बेसल प्रयोग 5 लीटर/बेसिन ड्रेंचिंग 10 दिनों के अंतराल पर किया जाता है।

**बेसल प्रयोग के 5 दिनों बाद 15 दिनों के अंतराल पर 5% की दर से पत्तियों पर प्रयोग शुरू किया जाता है।

उपरोक्त चरणों का पालन करके किसान ठंडे रेगिस्तानों में जीवामृत का प्रभावी ढंग से प्रयोग कर सकते हैं, मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि, पौधों के विकास को बढ़ावा देकर और टिकाऊ कृषि पद्धतियों को सुनिश्चित कर सकते हैं।

संरक्षण

घड़ा सिंचाई से जल का कुशल उपयोग

भूपेन्द्र सिंह नायक[1], **बी.के.राव**[1], **रवि दुप्दल**[2], **मिस अनुषा एन.एम**[3] और **कविता जादव**[3]

अल्प वर्षा के साथ-साथ जल का अत्यधिक उपयोग और बढ़ती मांग के कारण इसकी उपलब्धता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। अब जल आपूर्ति एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है। भविष्य में पानी की समस्या सबसे बड़ी चुनौती भी बन सकती है। कृषि उत्पादन के लिए जल की उपलब्धता और सिंचाई दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सिंचाई हेतु जल का कम से कम नुकसान के साथ प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए ताकि इसकी प्रति बूंद से अधिक फसल प्राप्त हो सके। जहां अल्प वर्षा के साथ-साथ पानी की उपलब्धता भी कम है, वहाँ घड़ा सिंचाई तकनीक जल के कुशल उपयोग के लिए एक बेहतर विकल्प हो सकती है। घड़ा सिंचाई एक प्राचीन और बहुत प्रभावी सिंचाई प्रणाली है। इसका उपयोग कई शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में किया जाता है। यह तकनीक सरल, सस्ती है और इसमें जल संरक्षण की काफी संभावना है। यह तकनीक बागवानी फसलों के लिए खासकर पानी की कमी या लवणता वाले क्षेत्रों में उपयोगी है। यह एक लागत प्रभावी और कुशल सिंचाई तरीका है, जो विशेष रूप से छोटे खेतों और शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। घड़ा सिंचाई को अपनाकर, शुष्क और जल की कमी वाले क्षेत्रों में खेती के लिए अधिक क्षेत्र को सिंचाई के अंतर्गत लाकर भविष्य के लिए बेहतर कृषि विकास और खाद्य स्थिरता को सुनिश्चित कर सकते हैं।

जल एक अनमोल प्राकृतिक संसाधन है क्योंकि यह सभी जीवित प्राणियों के लिए अति आवश्यक है और पृथ्वी पर जीवन का समर्थन करता है। यह कृषि और खाद्य उत्पाद के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अल्प वर्षा के साथ-साथ जल का अत्यधिक उपयोग, निरंतर प्रदूषण और बढ़ती मांग के कारण इसकी उपलब्धता और आपूर्ति दुनिया के कई हिस्सों में लगातार सीमित होती जा रही है। जल की कमी अब एक वैश्विक चिंता का विषय बन गया है और यह संभवत: निकट भविष्य में सबसे बड़ी चुनौती बन सकती है। इस अनमोल प्राकृतिक संसाधन का विवेकपूर्ण उपयोग, प्रबंधन और संरक्षण किया जाना चाहिए ताकि यह लंबे समय तक टिकाऊ रहे। अब समय आ गया है कि बेहतर प्रबंधन और सिंचाई तकनीकों के माध्यम से जल के संरक्षण और कुशल उपयोग के बारे में सोचा जाए ताकि उपलब्ध जल संसाधनों की प्रति इकाई मात्रा में उत्पादन को अधिकतम किया जा सके।

[1]प्रधान वैज्ञानिक; [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक; [3]वैज्ञानिक
भाकृअनुप- भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र, बल्लारी-583104, कर्नाटक

सिंचाई उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाने वाला जल कृषि उत्पादन को अधिकतम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इसे उपयोग के दौरान कम से कम नुकसान के साथ प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में घड़ा सिंचाई तकनीक एक बेहतर विकल्प हो सकता है, जल की कमी वाले क्षेत्रों में पानी के कुशल उपयोग, प्रबंधन और संरक्षण के लिए।

घड़ा सिंचाई लागत प्रभावी, किसान-अनुकूल और स्थापित करने में आसान है। जहां पानी अत्यधिक खारा भी हो, उन क्षेत्रों में भी घड़ा सिंचाई प्रणाली का उपयोग करके पौधों को बिना किसी नमी तनाव के घड़ों के आसपास उगाया जा सकता है। इसके अलावा यह तकनीक सरल, सस्ती और इसमें पानी की बड़ी बचत की संभावना है। घड़ा सिंचाई एक प्राचीन तकनीक है जिसका उपयोग ईरान, भारत, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिकी देशों के कई हिस्सों में किया जाता है।

फसल उत्पादन पर प्रभाव

एक प्रयोग से यह पाया गया कि घड़े से सिंचित केवल 2 सें.मी. पानी प्रति हैक्टर का उपयोग करके तरबूज की उपज 25 टन प्रति हैक्टर थी। जबकि बाढ़ सिंचाई के साथ 26 सें.मी. पानी का उपयोग करके तरबूज की उपज 33 टन प्रति हैक्टर थी। खीरे के उत्पादन का एक विस्तृत अध्ययन किया गया। जिसमें दिखाया गया कि घड़े से 1.9 मि.मी. प्रति हैक्टर की सिंचाई से अधिक उपज प्राप्त हुई। भारत में खारे सिंचाई जल का उपयोग करके 27 टन प्रति हैक्टर टमाटर की उच्च उपज प्राप्त की गई। जबकि इस क्षेत्र में ताजे पानी के साथ सामान्य उपज 15-25 टन के बीच थी।

सिफारिशें

- घड़े छिद्रयुक्त और टेराकोटा या इसी तरह के होने चाहिए।
- घड़ों का आयतन 7 से 10 लीटर होना चाहिए, लेकिन यह फसल के प्रकार और पानी की आवश्यकता के आधार पर अलग-अलग हो सकता है।
- एक घड़े के चारों ओर एक सब्जी की फसल के चार पौधे उगाए जा सकते

उन्नत प्रणाली

घड़े की सिंचाई एक कम लागत वाली और पानी की बचत करने वाली प्राचीन सिंचाई पद्धति है। इसमें फसल के पौधों और वृक्षों तक पानी पहुंचाने के लिए मिट्टी के बर्तनों (घड़ों) का उपयोग किया जाता है। यहाँ घड़ों को मिट्टी में गाड़कर जल की एक नियंत्रित तथा कोमल आपूर्ति प्रदान की जाती है। जल बर्तन से बाहर निकलकर सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचता है। यह विधि विशेष रूप से शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में उपयोगी है जहाँ पानी की कमी होती है या मृदा चुनौतीपूर्ण होती है। घड़े की सिंचाई का अविष्कार हजारों वर्ष पहले उत्तरी अफ्रीका के किसानों ने किया था। यह उन जगहों पर फसल और पेड़ उगाने में भी मदद कर सकती है जहाँ उपलब्ध जल या मृदा नमक से प्रभावित है।

हैं, लेकिन अगर फसल की पानी की आवश्यकता कम है, तो इसकी संख्या बढ़ाई जा सकती है।

- गीले क्षेत्र में जल भराव से बचने के लिए घड़ों को 1 से 2 मीटर की दूरी पर रखा जाना चाहिए।
- घड़ों को इस तरह से गाड़ा जाना चाहिए कि उनका मुख जमीन के बराबर हो।
- घड़ों को रखने के लिए खोदे गए गड्ढों को पौधों की बेहतर वृद्धि के लिए 1:1 अनुपात में मृदा और खाद के मिश्रण से भरना चाहिए।
- मृदा और खाद के मिश्रण को समायोजित करने के लिए गड्ढे की गहराई घड़े की ऊंचाई से 20 सें.मी. ज्यादा होनी चाहिए।

घड़े द्वारा सिंचाई

इस प्रणाली में आधा जला हुआ या अकाचित घड़ों को गर्दन तक मिट्टी में गाड़कर पानी से भर दिया जाता है। घड़े की दीवार में मौजूद प्राकृतिक सूक्ष्म छिद्रों से पानी धीरे-धीरे बाहर निकलता है और घड़े के चारों ओर की मिट्टी में फैल जाता है और मिट्टी को गीला कर देता है। इससे पौधे के विकास के लिए आवश्यक अनुकूल वातावरण और नमी की स्थिति बनती है । फिर घड़े के चारों ओर बीज या पौधे लगाए जाते हैं। जैसे-जैसे पौधा पानी का उपयोग करता है, घड़े से और पानी रिसता है। इस तरह, घड़ा पौधे को जरूरत पड़ने पर बिल्कुल सही मात्रा में पानी देता है। किसान नियमित रूप से घड़ों की जाँच कर, उसमें आवश्यकतानुसार पानी भरा जाता है इससे पौधे की जड़ वाले क्षेत्र में सीधे पानी की निरंतर आपूर्ति बनी रहती है। वाष्पीकरण को रोकने के लिए ढक्कन से घड़े को ढका जाता है।

घड़े द्वारा पौधों में जल आपूर्ति

- यह सभी पारंपरिक तरीकों में सिंचाई के सबसे सस्ते तरीकों में से एक है।
- इस विधि में केवल घड़े के पास का क्षेत्र ही सिंचित होता है, पूरा क्षेत्र सिंचित नहीं होता।
- इस विधि में पानी का वाष्पीकरण न्यूनतम होता है।
- इस्तेमाल किए जाने वाले घड़े बहुत कम लागत वाले, पर्यावरण के अनुकूल, हाथ से और स्थानीय रूप से मिट्टी से बनाए जाते हैं।
- इसे स्थापित करना और बनाए रखना बहुत आसान है।
- यह बायो-डिग्रेडेबल है और इससे पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता है।
- यह खरपतवार नियंत्रण में प्रभावी है।
- इसका इस्तेमाल कम हवा के तापमान वाली ठंडी जलवायु में किया जा सकता है।
- यह बहुत गर्म, शुष्क परिस्थितियों में भी बीज के अंकुरण और स्थापना में सुधार करने में मदद करता है।
- घड़ों में पानी भरने और अन्य कार्य संचालन करने के लिए कम श्रम की आवश्यकता होती है।
- यह मृदा की संरचना के लिए बेहतर है क्योंकि पानी सीधे मृदा पर नहीं डाला जाता है और इससे मृदा का कटाव नहीं होता है।
- बीज क्यारी ढीली रहती है और उसमें भरपूर हवा का संचार हो पाता है, जिससे मृदा अधिक छिद्रपूर्ण रहती है और फसल की वृद्धि के लिए अनुकूल रहती है।
- मृदा सुधारक जैसे खाद, कम्पोस्ट या रासायनिक उर्वरक आसानी से प्रयोग किए जा सकते हैं।
- लवणता की समस्या वाले क्षेत्रों में फसल उगाने के लिए किसान घड़े की सिंचाई का उपयोग कर सकते हैं।
- यह ड्रिप, स्प्रिंकलर आदि जैसी अन्य उच्च तकनीक सिंचाई प्रणालियों की तुलना में अधिक कुशल है।
- यह सिंचाई के अन्य तरीकों की तुलना में 90% तक पानी बचाता है।
- बागवानी फसलों और सब्जियों के लिए यह सबसे अच्छी विधि है।
- यह स्थानीय कारीगरों के लिए अधिक रोजगार के अवसर प्रदान कर सकता है, जो अपनी आजीविका के लिए केवल घड़े बनाने और बेचने पर निर्भर हैं।

तकनीक का दायरा

घड़े की सिंचाई जल बचत, संरक्षण और प्रबंधन की एक कम लागत वाली कुशल विधि है, इसलिए इसे अर्ध-शुष्क और शुष्क क्षेत्रों के किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाया जा सकता है। यह आर्द्र क्षेत्रों में भी प्रभावी है जहाँ सिंचाई के लिए पानी की कमी है। इन क्षेत्रों के किसानों को इस तकनीक के बेहतर प्रदर्शन के लिए तकनीकी पहलुओं पर विशेषज्ञों द्वारा मार्गदर्शन और प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

जल की कमी और अनुपयुक्त जल प्रबंधन कृषि उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौतियां पेश करते हैं। इसके लिए कुशल जल संरक्षण तकनीक 'घड़े की सिंचाई' को अपनाकर, शुष्क, खारा पानी और पानी की कमी वाले क्षेत्रों में खेती के लिए सिंचाई के तहत अधिक क्षेत्र लाकर भविष्य के लिए बेहतर कृषि विकास और खाद्य स्थिरता के बारे में सोच सकते हैं। ■

पोषण

शीतोष्ण फल वृक्षों में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

राज कुमार, कमल कुमार पाण्डे, एन. के. सिंह, अमित कुमार और **हरीश चंद जोशी**

अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर खेती के लिए पर्णपाती फल वृक्ष उपयुक्त होते हैं। इनमें फूल और फलन के लिए दो से तीन माह तक शीतलन या ठण्ड (0-7.2 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान) की आवश्यकता होती है। इसे चिलिंग या शीतलन आवश्यकता कहते हैं। भारत में उगाये जाने वाले मुख्य शीतोष्ण फल सेब, नाशपाती, आड़ू, आलूबुखारा इत्यादि हैं। उत्तराखंड, मुख्यत: कुमाऊं क्षेत्र में उचित पोषक तत्व प्रबंधन न करने के कारण शीतोष्ण फलों की उत्पादकता विश्व के अन्य देशों जैसे चीन एवं अमेरिका की अपेक्षा कम होने के मुख्य कारणों में से एक है। फलों की खेती से लम्बे समय तक अच्छी गुणवत्ता वाले फल, अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त करने के लिए नियमित रूप से मृदा जांच की रिपोर्ट के हिसाब से उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण करना चाहिए। कृषि विज्ञान केंद्र, बागेश्वर द्वारा फलवृक्षों में पोषक तत्व प्रबंधन पर समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन, विधि प्रदर्शन, किसान गोष्ठी, बैठकों, सलाहकार सेवा इत्यादि का आयोजन करके किसानों को इसके महत्व एवं प्रतिफल से अवगत करवाया जाता है।

भारत में शीतोष्ण फलों की खेती मुख्य रूप से जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड में की जाती है।

हमारे देश की शीतोष्ण फलों की उत्पादकता 82.0 क्विंटल प्रति हैक्टर है, जबकि विश्व के अन्य शीतोष्ण फल उत्पादक देश जैसे चीन (180.0 क्विंटल प्रति हैक्टर) एवं अमेरिका (356.0 क्विंटल प्रति हैक्टर) हैं।

उत्तराखंड में कुमाऊं क्षेत्र की शीतोष्ण फलों की उत्पादकता देश की उत्पादकता से कम है जिसके मुख्य कारण:

- किसानों की छोटी जोत (देश की औसत जोत -1.57 हैक्टर, उत्तराखंड की औसत जोत -0.95 हैक्टर, अल्मोड़ा, बागेश्वर और भी कम नाली) का होना।
- अधिकांश फसलों में अधिक उपज देने वाली किस्मों की कमी।
- वर्षा आधारित खेती और खराब सिंचाई व्यवस्था।
- अधिकांश बाग पुराने हैं और वे पुरानी किस्मों से स्थापित किये गये हैं।
- गुणवत्तायुक्त पौधों की कमी।
- जलवायु परिवर्तन के कारण, पौधों की शीतलन आवश्यकता का पूरा न होना।
- प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की संख्या में कमी।
- जंगली पशुओं का अधिक प्रकोप।
- ढलान वाले खेत, कम उपजाऊ मृदा और मृदा की जलधारण क्षमता में कमी।
- प्रबंधन कारक जैसे पोषक तत्व, सिंचाई, उचित जल निकास, कीट एवं रोगों का समुचित प्रबंधन और अनुशंसित प्रौद्योगिकियाँ जैसे कटाई-छंटाई इत्यादि को न अपनाना है।

कृषि विज्ञान केंद्र, भाकृअनुप- वि.प.कृ.अनु.सं., बागेश्वर, काफलीगैर, उत्तराखंड-263628

उपरोक्त में से उचित खाद और उर्वरक का प्रबंधन न करना कम उत्पादकता के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है।

बगीचा लगाने से पूर्व मृदा की जांच जरूर करवानी चाहिए। इससे मृदा में उपस्थित पोषक तत्व एवं समस्याओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसके अनुसार ही उचित प्रबंधन किया जा सकेगा। फल वृक्षों की अच्छी वृद्धि, विकास एवं गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए पौधों में उचित खाद और उर्वरक का प्रबंधन करना जरूरी है। अच्छी गुणवत्ता वाले फलों का बाजार में भाव अधिक मिलता है।

पौधों को उनके जीवन चक्र को पूरा करने के लिए 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन तीनों पोषक तत्व पौधों को हवा एवं पानी से मिल जाते हैं। इन्हें बाहर से देने की जरूरत नहीं पड़ती है और ये पौधे का लगभग 95 प्रतिशत भाग बनाते हैं। पोषक तत्वों को पौधों की आवश्यक मात्रा के आधार पर 3 वर्गों-प्राथमिक या मुख्य पोषक तत्व, द्वितीयक या गौण पोषक तत्व एवं सूक्ष्म पोषक तत्व में बांटा गया है;

प्राथमिक या मुख्य पोषक तत्व: इन पोषक तत्वों की द्वितीयक या गौण पोषक तत्वों की तुलना में अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश।

सूक्ष्म पोषक तत्व

पूर्ण विकसित वृक्ष में सभी सूक्ष्म पोषक तत्वों के मिश्रण की 250-300 ग्राम मात्रा प्रति पौधा प्रति वर्ष देनी चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए मृदा में ना मिलाकर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए। जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर जिंक सल्फेट का 0.5 प्रतिशत तथा बोरॉन की कमी की दशा में बोरिक अम्ल का 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए। उर्वरकों की उपयोग क्षमता बढ़ाने और श्रम को कम करने के लिए उर्वरकों को फर्टिगेशन प्रणाली से देना चाहिए।

सारणी 1: शीतोष्ण फल वृक्षों की शीतलन आवश्यकता

फल वृक्ष का नाम	शीतलन आवश्यकता (0-7.2 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान) घंटों में
सेब	700-1200
नाशपाती	800-1000
आड़ू	800-1000
कीवी फल	700-800
आलूबुखारा	600-1200
खुबानी	300-900
अखरोट	300-700

प्राकृतिक खेती पर किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम

द्वितीयक या गौण पोषक तत्व: इन पोषक तत्वों की आवश्यकता प्राथमिक या मुख्य पोषक तत्वों से कम तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों से अधिक मात्रा की जरूरत होती है जैसे मैग्नीशियम, कैल्शियम एवं सल्फर।

पुष्प अवस्था में आड़ू वृक्ष

सूक्ष्म पोषक तत्व: इन पोषक तत्वों की आवश्यकता, प्राथमिक या द्वितीयक पोषक तत्वों की तुलना में बहुत कम होती है, परंतु पौधों की वृद्धि, विकास और प्रजनन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये पौधों में कई शारीरिक और जैव रासायनिक प्रक्रियाओं में शामिल होते हैं जैसे बोरॉन, जस्ता, मैंग्नीज, मॉलिब्डेनम, तांबा, क्लोरीन, आयरन। बोरॉन और जस्ता पौधों में कलिकाओं के विकास, फूल आने और फल लगने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

फलों की खेती से लम्बे समय तक अच्छी गुणवत्ता वाले फल, अधिक उत्पादन एवं आय प्राप्त करने के लिए नियमित रूप से मृदा जांच की रिपोर्ट के हिसाब से उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण करना चाहिए। यदि किन्हीं कारणों से मृदा की जांच नहीं हो पाये तो उस स्थिति में विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा पौधे की किस्म, पौधे की उम्र, मृदा का प्रकार, सिंचाई की उपलब्धता, इत्यादि के आधार पर निर्धारित उर्वरकों की मात्रा प्रति वर्ष देनी चाहिए।

फल वृक्षों में खाद एवं उर्वरक प्रयोग करते समय मात्रा, प्रयोग का समय और उचित स्थान का ध्यान जरूर रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रयोग का समय: शीतोष्ण फल वृक्ष में खाद एवं उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा पौधों की कटाई-छंटाई के बाद देनी चाहिए। गोबर की खाद, फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा एवं नाइट्रोजन की आधी मात्रा जनवरी-फरवरी माह में देनी चाहिए तथा नाइट्रोजन की शेष मात्रा अप्रैल माह में देनी चाहिए। अफलन वाले और कमजोर वृक्षों में नाइट्रोजन की अनुशंसित मात्रा 2-3 बार में छिड़ककर देने की सिफारिश की गई है।

देने का स्थान: गोबर की खाद, फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा वृक्ष की परिधि में 15-20 सें.मी. गहराई पर देनी चाहिए तथा नाइट्रोजन अत्यधिक गतिशील पोषक तत्व होता है, अत: मृदा की ऊपरी सतह में मिलाकर दिया जा सकता है।

पलवार: बगीचे की खाली जगह की मृदा को घास, पॉलीथीन इत्यादि से ढककर रखना चाहिए। इससे मृदा में नमी लम्बे समय तक बनी रहती है और सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ खरपतवारों से निजात मिल सकती है। घास की पलवार करने से मृदा में जैविक कार्बन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। वर्षा आधारित फलों की खेती में पलवार का महत्व और भी अधिक हो जाता है।

फलन अवस्था में आड़ू वृक्ष

सिंचाई: शीतोष्ण फलवृक्षों से अच्छी उपज और गुणवत्तायुक्त फल प्राप्त करने के लिए उचित सिंचाई प्रबंधन करना अत्यंत आवश्यक है। मृदा के प्रकार, मौसम और फसल की अवस्था जैसे कारकों को ध्यान में रखते हुए 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। उपलब्ध सिंचाई जल का इष्टतम उपयोग करने के लिए बूंद-बूंद विधि का उपयोग करना चाहिए। इससे जल सीधे पौधों की जड़ क्षेत्र में पहुँच जाने से जल उपयोग दक्षता में सुधार होता है।

अत: किसान अपने बगीचे में खाद एवं उर्वरकों का उचित प्रबंधन करके गुणवत्तायुक्त व अधिक फल उत्पादन करके अपनी आय को बढ़ा सकते हैं। ■

सारणी 2: शीतोष्ण फल वृक्ष (10 वर्ष या अधिक उम्र) में खाद एवं उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा

फल वृक्ष	सड़ी हुई गोबर की खाद (किलोग्राम)	नाइट्रोजन (ग्राम)	फॉस्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)
सेब	100	700	350	700
नाशपाती	100	700	350	700
आड़ू	100	500	250	700
आलूबुखारा	100	500	250	700
खुबानी	100	500	250	200
अखरोट	100	250	100	200
कीवी फल	100	900	600	900

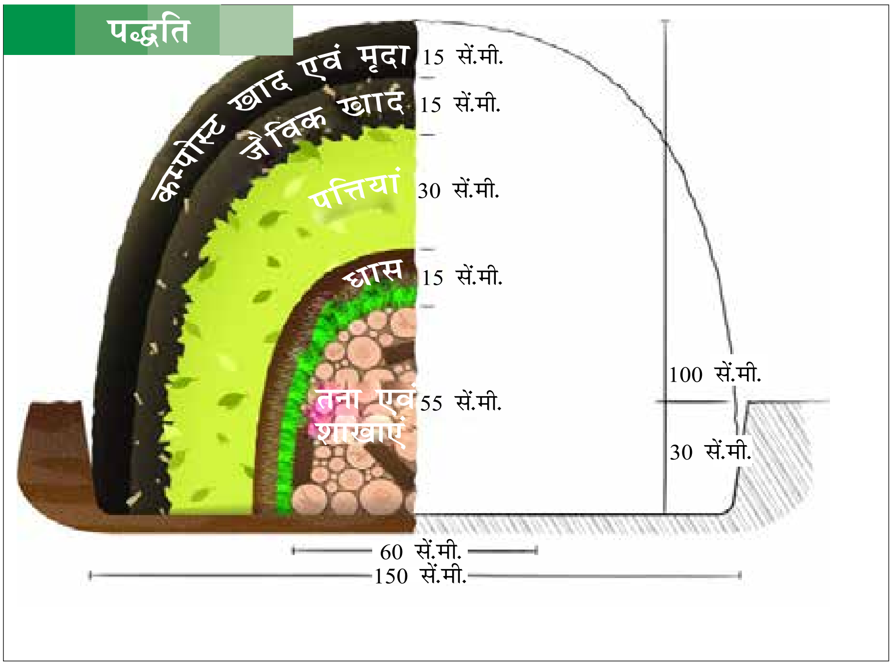

ह्यूगेल कल्चर से प्राकृतिक खेती

आर. के. मीणा, तुलिका कुमारी, एस.एल. सिंह और **रश्मि सिन्हा**

ह्यूगेल कल्चर एक टिकाऊ, कम श्रम वाली और कुशल बागवानी विधि है, जिसे 1970 के दशक में जर्मन विशेषज्ञ हंस बेबा और हरमन आंद्रा ने विकसित किया। इसे "टीला कल्चर" भी कहा जाता है। इसमें पुराने लकड़ी के लट्ठे, शाखाएँ, पत्तियाँ और अन्य कार्बनिक अवशेष परत-दर-परत लगाकर पहाड़ीनुमा क्यारियां बनाई जाती हैं। इस विधि से बनी क्यारियां नमी और पोषक तत्वों को लंबे समय तक संचित रखती हैं इससे पौधों की सतत वृद्धि होती है। लकड़ी के धीरे-धीरे क्षय होने से पौधों को दीर्घावधि तक पोषण मिलता है। और यह प्रक्रिया गर्मी भी उत्पन्न करती है जो पौधों की बढ़वार में सहायक होती है। ह्यूगेल कल्चर क्यारी बनाने के लिए आवश्यक सामग्री आसानी से उपलब्ध और सस्ती होती हैं। प्राकृतिक अवशेषों का उपयोग इसे पर्यावरण-अनुकूल बनाता है। इसकी सरलता, दीर्घकालिक पोषण आपूर्ति और कम लागत इसे छोटे और बड़े किसानों के लिए एक आदर्श और टिकाऊ बागवानी विकल्प बनाती है।

भारत में अधिकांश किसान एक हैक्टर से कम भूमि पर खेती करते हैं। इससे खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो रही है। रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा की उर्वराशक्ति एवं फसल की गुणवत्ता में भी कमी आ रही है। ऐसे में ह्यूगेल कल्चर एक उपयुक्त विकल्प है। यह प्रणाली प्राकृतिक सामग्री पर आधारित है जो बुआई क्षेत्र को बढ़ाती है और टिकाऊ खेती के साथ मृदा एवं मानव स्वास्थ्य दोनों को सुरक्षित रखती है।

ह्यूगेल क्यारी बनाने की विधि

सबसे पहले घास हटाकर एक आयताकार गड्ढा खोदा जाता है। इसमें सूखी शाखाएँ, पत्तियाँ और खराब फल लगभग दो फीट ऊँचाई तक बिछाए जाते हैं। फिर लकड़ी का मलबा, वनस्पति अवशेष, गोबर की खाद और उपजाऊ मिट्टी की परतें क्रमशः डाली जाती हैं। अंत में इसे टीले का आकार देकर ह्यूगेल क्यारी को तैयार किया जाता है।

ह्यूगेल क्यारी के प्रकार

ह्यूगेल क्यारी मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं:

- **पारंपरिक ह्यूगेल क्यारी:**- यह जमीन पर बने साधारण टीले जैसी होती है। इसे बनाना आसान है, लेकिन इसमें पानी लंबे समय तक संरक्षित नहीं रहता।
- **धँसी ह्यूगेल क्यारी:** - इसमें लकड़ियों से भरी खाई बनाई जाती है, जिसका ऊपरी भाग जमीन के समतल रहता है और यह सामान्य बगीचे की क्यारी जैसी दिखती है।
- **संकर ह्यूगेल क्यारी:** - यह आंशिक रूप से जमीन में धंसी होती है। इसके किनारे लकड़ी या धातु से बने होते हैं। यह पानी को अधिक समय तक संरक्षित रखने में सक्षम होती है, विशेषकर जब इसमें गहराई तक लकड़ियों के टुकड़ों का उपयोग किया जाये।

बढ़ती जनसंख्या के कारण खेती योग्य भूमि लगातार कम हो रही है। ऐसे में ह्यूगेल कल्चर तकनीक का महत्व और भी बढ़ गया है। यह पद्धति फसल क्षेत्र को बढ़ाकर कम भूमि पर भी कम लागत में अधिक उत्पादन संभव बनाती है। यह प्रणाली विशेष रूप से सब्जियों की खेती के लिए उपयुक्त है और इसमें उगाई गई फसलें रसायनमुक्त होती हैं, जिससे स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह तकनीक सीमित भूमि वाले किसानों को भी आत्मनिर्भर बनाने में सहायक है। ■

लाभ

ह्यूगेल कल्चर एक आसान और प्राकृतिक खेती की पद्धति है। इसमें पूरी तरह प्राकृतिक सामग्री जैसे सूखी टहनियाँ, घास, तना, पत्तियाँ और मिट्टी का उपयोग किया जाता है। इसके प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं:

- **जल संरक्षण:** ह्यूगेल क्यारी पानी की बचत करती है और कम सिंचाई में भी फसल उत्पादन संभव है।
- **सस्ती और सरल:** इसके लिए महंगे संसाधन या विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती।
- **फसल क्षेत्र में वृद्धि:** क्यारी की ढलान के कारण पारंपरिक समतल खेत की तुलना में लगभग दोगुना क्षेत्रफल मिलता है।
- **बेहतर वृद्धि परिस्थितियाँ:** ऊपरी भाग सूखा और जल निकासी वाला होता है, जबकि निचला भाग नमीयुक्त रहता है। इस वजह से अलग-अलग फसलें एक ही क्यारी पर उगाई जा सकती हैं।
- **दूषित मृदा से सुरक्षा:** यह तकनीक प्रदूषित मृदा वाले क्षेत्रों में पौधों को सुरक्षित रखने का विकल्प देती है।
- **खाद्य सुरक्षा:** सीमित भूमि पर अधिक उत्पादन संभव होने से छोटे उद्यान भी परिवार को आत्मनिर्भर बना सकते हैं।

डॉ राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा (समस्तीपुर)- 84812

हिमाचल प्रदेश में प्लम फल का उत्पादन

जितेन्द्र कुमार, के. के. प्रमाणिक, संतोष वाटपाड़े, धर्म पाल वालिया और **दीपक**

प्लम (प्रूनस सैलिसिना) दुनिया के समशीतोष्ण क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण फल है, जो आर्थिक महत्व में आड़ू के बाद दूसरे स्थान पर आता है। आलूबुखारा/प्लम प्रूनस वंश और रोसेसी कुल से संबंधित है। इसमें दो प्रमुख प्रजातियां शामिल हैं- यूरोपीय प्रजाति (प्रूनस डोमेस्टिका एल.) और जापानी प्रजाति (प्रूनस सैलिसिना)। जापानी प्लम की उत्पत्ति चीन से हुई मानी जाती है। ये रसदार एवं स्वादिष्ट फल होते हैं। जापानी प्लम की अनेक किस्में विकसित की गई हैं, जो विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। भारत में प्लम की खेती 1870 से की जा रही है। वर्तमान में इसे मुख्यत: पूर्वोत्तर राज्यों, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में उगाया जाता है। प्रूनस सैलिसिना (जापानी समूह) की किस्में भारत में व्यावसायिक रूप से अधिक लोकप्रिय हैं क्योंकि ये ताजे फलों की खपत के साथ-साथ प्रसंस्करण के लिए भी उपयुक्त हैं। यूरोपीय प्लम की तुलना में जापानी प्लम को अपेक्षाकृत कम शीत-घंटों की आवश्यकता होती है। भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख जापानी प्लम किस्में हैं-ब्यूटी, मेथली, सांता रोजा, केल्सी, मारिपोसा, सत्सुमा, बरबैंक रेड ब्यूटी और फ्रोंटेइर।

भारत में प्लम का उत्पादन 67.94 मीट्रिक टन (राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, 2023-24) वार्षिक स्तर पर होता है और यह फल देश के लगभग 13 राज्यों एवं केंद्र शासित क्षेत्रों में उगाया जाता है। हिमाचल प्रदेश 13.89 मीट्रिक टन उत्पादन के साथ देश में दूसरे स्थान पर है (राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, 2023-24)।

उपोष्णकटिबंधीय प्लम की खेती उत्तर-पश्चिम भारत के मैदानी क्षेत्रों में सीमित पैमाने पर की जाती है, जिनमें पंजाब अग्रणी राज्य है। बेहतर फल गुणवत्ता, आकर्षक रंग, उपयुक्त आकार एवं उत्कृष्ट शिपिंग क्षमता के कारण किसानों द्वारा 'सतलुज पर्पल' किस्म का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जा रहा है।

भाकृअनुप-भाकृअनुसं, क्षेत्रीय केंद्र अमरतारा कॉटेज, शिमला-171004ए (हिमाचल प्रदेश)

जलवायु

प्लम की बागवानी विभिन्न जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होती है और इसकी खेती उपोष्णकटिबंधीय मैदानों से लेकर समशीतोष्ण उच्च पहाड़ी क्षेत्रों तक की जाती है।

यूरोपीय किस्मों को समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है तथा ये 1300-2000 मीटर ऊँचाई वाले उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। इन किस्मों की सुषुप्तावस्था तोड़ने हेतु सर्दियों में 7°C से नीचे लगभग 1000-1200 शीत घंटों की आवश्यकता होती है।

इसके विपरीत, जापानी प्लम अपेक्षाकृत कम शीत घंटों (200-1000) की आवश्यकता रखते हैं, जो सामान्यत: 800-1500 मीटर ऊँचाई वाले मध्य पहाड़ी क्षेत्रों में उपलब्ध होते हैं।

प्रून प्राय: ऐसे क्षेत्रों में उगाए जाते हैं जहाँ वर्षा न्यूनतम तथा आर्द्रता कम होती है, जिससे रोगों की आशंका घटती है। प्लम की बागवानी के लिए फ्रॉस्ट-फ्री स्प्रिंग वाले क्षेत्र, अच्छी वायु/जल निकासी तथा गर्मियों में पर्याप्त धूप अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है। आम तौर पर उत्तरी ढलानों को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि यहाँ फूल आने में कुछ विलंब होता है, जिससे पौधों को वसंत ऋतु के पाले (स्प्रिंग फ्रॉस्ट) से सुरक्षा मिलती है।

प्लम की अच्छी वृद्धि हेतु लगभग 100 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा उपयुक्त मानी जाती है। हालांकि, वृद्धि और विकास के चरणों में लम्बे समय तक सूखा तथा परिपक्वता के समय अत्यधिक वर्षा, दोनों ही फल की गुणवत्ता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हैं।

मृदा

प्लम को विभिन्न प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है, फिर भी 5.5-6.5 पी. एच. मान वाली गहरी, उपजाऊ और अच्छी जल निकासी युक्त दोमट मृदा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। मृदा कठोर परत, जल-जमाव और अत्यधिक लवणता से मुक्त होनी चाहिए। बहुत भारी या अत्यधिक हल्की मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है। जापानी प्लम अपेक्षाकृत औसत मिट्टी में भी अच्छे से उगते हैं, भले ही उसका पी. एच. मान अधिक हो।

कटाई-छँटाई

प्लम के पेड़ एक वर्ष पुराने स्पर पर फल देते हैं, जिनकी जीवन अवधि लगभग 5-6 वर्ष होती है। इसलिए छँटाई के दौरान स्परों का नवीनीकरण आवश्यक है। उचित

फलन हेतु शाखाओं को लगभग 30% पतला करना और 1/3 से 1/2 भाग तक हेडिंग बैक करना अनुशंसित है। छँटाई इस प्रकार की जानी चाहिए कि प्रति वर्ष 25-50 सें.मी. की नई वृद्धि हो सके। सभी मृत, रोगग्रस्त एवं टूटी हुई शाखाओं को अवश्य हटाना चाहिए।

परिपक्वता सूचकांक

प्लम प्राय: असमान रूप से पकते हैं, इसलिए फलों की तुड़ाई दो से तीन चरणों में की जाती है। फलों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए तुड़ाई का सही चरण चुनना अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिपक्वता निर्धारण हेतु सामान्यत: उपयोग किए जाने वाले सूचकांक हैं-गूदे की दृढ़ता, पूर्ण फूल आने से तुड़ाई तक के दिन तथा कुल घुलनशील ठोस।

ग्रेडिंग और पैकिंग

बाजार में उच्च मूल्य प्राप्त करने के लिए फलों की ग्रेडिंग आवश्यक है। ग्रेडिंग से फलों का आकार एक समान होता है तथा बेहतर गुणवत्ता सुनिश्चित होती है। प्लम की ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग हेतु हि.प्र. बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित सारणी अनुसार मानक निर्धारित किए गए हैं।

हिमाचल प्रदेश में उगाई जाने वाली कुछ प्रमुख प्लम एवं प्रून किस्में

रेड ब्यूट

यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है, जो प्राय: मई के अंतिम सप्ताह में परिपक्व होती है। इसे विशेष रूप से मध्य-पहाड़ी क्षेत्रों के लिए अनुशंसित किया गया है, हालांकि इसे कम पहाड़ी क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं, जिनमें 80-90 प्रतिशत लाल और 10-20 प्रतिशत पीला रंग पाया जाता है। गूदा पीले रंग का तथा हल्की सुगंध युक्त होता है। अच्छी फसल सुनिश्चित करने के लिए परागणकों की आवश्यकता होती है।

रेड ब्यूट

सांता रोसा

इस किस्म के फल बड़े आकार के और बैंगनी-लाल रंग के होते हैं। गूदा एम्बर रंग का होता है, जो त्वचा के समीप लालिमा लिए होता है। यह किस्म स्व-फलदायी है। फल अत्यधिक रसदार और विशिष्ट सुगंधयुक्त होते हैं। परिपक्वता जुलाई में होती है और यह मध्य-पहाड़ियों के लिए अनुशंसित है।

मैरीपोसा

फल मध्यम से बड़े आकार के तथा गोल होते हैं। फल का रंग हल्का हरा होता है जिस पर लाल आभा होती है। गूदा मीठा होता है। यह देर से परिपक्व होने वाली किस्म है, जो सांता रोसा के लगभग एक माह बाद पकती है। इसकी शेल्फ लाइफ अच्छी होती है।

फ्रियार

इस किस्म के फल गोलाकार होते हैं, जिनकी त्वचा काले रंग की (ब्लैक स्किन) होती है। गूदा एम्बर रंग का होता है तथा फल फ्रीस्टोन प्रकार का होता है, अर्थात् गूदे से बीज आसानी से अलग हो जाता है। फल अपेक्षाकृत कठोर होते हैं और सांता रोसा से लगभग 4-5 सप्ताह बाद परिपक्व होते हैं। फल जमाव में सुधार हेतु यह किस्म स्व-फलदायी है, किंतु कभी-कभी सांता रोसा को परागणक के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।

फ्रियार

डुआरैट

यह किस्म अत्यंत बड़े आकार के लाल रंग के फलों वाली है। इसका गूदा लाल रंग का होता है और इसमें उत्कृष्ट सुगंध पाई जाती है। इसे बाजार एवं व्यावसायिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ प्लम किस्मों में से एक माना जाता है। इसके ताजा फल सेवन के साथ-साथ जैम और जेली बनाने के लिए उपयुक्त होते हैं तथा ठीक से सुखाए भी जा सकते हैं। उच्च फलन के लिए अन्य जापानी प्लम किस्मों के साथ परागण की आवश्यकता होती है।

शिरो

यह सभी पीली प्लम किस्मों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसके फल चमकीली पीली त्वचा और गूदे वाले होते हैं तथा भारी फलन देते हैं। यह किस्म गर्मी सहनशीलता दर्शाती है और क्लिंगस्टोन समूह के अंतर्गत आती है। इसके फल सामान्यत: जुलाई के अंत तक परिपक्व हो जाते हैं।

एंजेलिनो

यह बहुत देर से परिपक्व होने वाली किस्म है। इसके फल अगस्त माह के अंत तक तुड़ाई योग्य हो जाते हैं। फल बड़े आकार के गोल, ऊपर और नीचे से हल्के दबे हुए

एंजेलिनो

उन्नत तकनीक से संरक्षण

प्लम फल सामान्यत: मई के प्रथम पखवाड़े से पकना आरंभ करता है और किस्म के अनुसार जुलाई के अंत तक उपलब्ध रहता है। इस अवधि के दौरान गर्म एवं शुष्क जलवायु फल की टिकाऊ क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। प्लम एक क्लाइमेक्टेरिक फल है, अर्थात् तुड़ाई के बाद भी इसका पकना जारी रहता है। इस दौरान विभिन्न फिजियोलॉजिकल और बायोकेमिकल परिवर्तन होते हैं- जैसे फल का नरम होना, त्वचा के रंग में बदलाव, बनावट में परिवर्तन, सुगंध और स्वाद का विकास आदि। हालांकि, विभिन्न फल विकारों के प्रति इसकी उच्च संवेदनशीलता के कारण, कम तापमान पर भी इसका भंडारण काल सीमित होता है। प्राय: 40 सेल्सियस औसत तापमान पर प्लम फल 3-4 दिन तक ही बाजार-योग्य गुणवत्ता बनाए रखते हैं। यह अवधि लंबी दूरी तक विपणन के लिए अपर्याप्त है। इसलिए फसल तुड़ाई के बाद रासायनिक उपचार जैसी सरल एवं किफायती तकनीकों का उपयोग करके हानि को कम करने की दिशा में बेहतर संभावनाएं मौजूद हैं। विशेष रूप से, प्लम की वे किस्में जिन्हें बिना किण्वन के सुखाया जा सकता है, प्रून कहलाती हैं। इन किस्मों का गूदा सख्त होता है। इनमें शर्करा की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है, जिससे इन्हें डिहाइड्रेटर अथवा धूप में सुखाकर लंबे समय तक संरक्षित किया जा सकता है।

सारणी: प्लम की ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग

ग्रेड	फल का आकार (मि.मी.)	बॉक्स में परतों की संख्या	फल प्रति लेयरेंसर आकार	बॉक्स का आकार (सें.मी.)
विशेष	>42	3	28-32	37X16.5X16.5
ग्रेड-I	36-42	4	38-42	
ग्रेड-II	<36	4	50-56	

होते हैं तथा इनमें एक स्पष्ट मध्य रेखा होती है। फल फ्रीस्टोन प्रकार का होता है, जिसकी त्वचा बैंगनी से काले रंग की तथा गूदा मीठा और सुनहरे रंग का होता है। इसकी शेल्फ लाइफ भी उत्तम मानी जाती है।

प्रेसिडेंट

यह देर से परिपक्व होने वाली किस्म है। इसका वृक्ष मध्यम आकार का होता है और मार्च के अंत में फूल देता है। फल सितंबर के मध्य में पककर तैयार हो जाते हैं। फल बड़े आकार के, रसीले, पीले गूदे वाले तथा नीले-काले रंग की त्वचा वाले होते हैं। यह किस्म ताजा उपभोग और प्रसंस्करण दोनों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

फॉर्च्यून

यह मध्य-मौसमी जापानी प्लम किस्म है, जिसे कैलिफोर्निया में विकसित किया गया है। इसके फल बड़े आकार के होते हैं, जिनकी त्वचा आकर्षक लाल और पीले रंग की होती है। गूदा पीले रंग का, रसीला, सुगंधित और स्वादिष्ट होता है। यह किस्म अत्यधिक उत्पादक होने के कारण व्यावसायिक उत्पादकों तथा घरेलू बागवानों दोनों के बीच लोकप्रिय है।

रोपण और रोपण घनत्व

नवंबर माह में 2.5 × 2.5 × 2.5 फीट आकार के गड्ढे तैयार करने चाहिए। इन गड्ढों की ऊपरी मिट्टी में अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद मिलानी चाहिए। रोपण दिसंबर से फरवरी के बीच किया जा सकता है (किस्म के अनुसार 2-5 मीटर की दूरी पर)। हालांकि, दिसंबर माह में शीघ्र रोपण वांछनीय है। उच्च जीवित रहने की दर सुनिश्चित करने हेतु रोपण के तुरंत बाद सिंचाई आवश्यक है। पौध लगाते समय जड़ों को उनकी प्राकृतिक अवस्था में ठीक से फैलाना चाहिए और मिट्टी भरने से पहले अच्छी तरह से ढकना चाहिए। कॉलर रॉट से बचाव के लिए ग्राफ्ट यूनियन को भूमि स्तर से लगभग 15 से.मी. ऊपर रखना चाहिए।

फॉर्च्यून

सतलुज पर्पल

यह एक जापानी प्लम किस्म है, जो अपनी गहरी बैंगनी त्वचा और असाधारण मिठास के लिए प्रसिद्ध है। भारत में इसे विशेष रूप से पंजाब और हिमाचल प्रदेश में उगाया जाता है। यह फल स्थानीय रूप से 'आलू बुखारा' के नाम से जाना जाता है और ताजा खाने के साथ-साथ प्रसंस्करण के लिए भी उपयुक्त है।

प्रून

स्टैनले

यह एक यूरोपीय प्लम किस्म है, जिसके फल अंडाकार आकार के होते हैं। इनकी त्वचा गहरे नीले-बैंगनी रंग की होती है और गूदा मीठा पीला, जिसमें हरे रंग की हल्की आभा दिखाई देती है। यह किस्म फ्रीस्टोन प्रकार की है तथा इसमें शर्करा की मात्रा उच्च पाई जाती है, जिससे यह सुखाने के लिए अत्यंत उपयुक्त है। यह स्व-उपजाऊ किस्म है और सामान्यत: अगस्त की शुरुआत में पकती है।

स्टैनले

इतालवी प्रुन: यह किस्म छोटे से मध्यम आकार के अंडाकार या आयताकार फलों के लिए प्रसिद्ध है। इनका सिरा थोड़ा नुकीला और पतला होता है। फल की त्वचा

फ्रंटियर

इसके फल सांता रोसा से बड़े होते हैं और दिल के आकार के होते हैं। गूदा लाल, समान रूप से मीठा, अत्यधिक रसदार तथा छोटे बीज वाला होता है, जो गूदे से आसानी से अलग हो जाता है। यह किस्म सांता रोसा से लगभग 10-15 दिनों बाद (जुलाई में) परिपक्व होती है। इसकी भंडारण क्षमता भी अच्छी होती है।

गहरे लाल से बैंगनी रंग की होती है, जो पकने पर लगभग काली हो जाती है। गूदा सुनहरे-पीले से हरे-पीले रंग का, घना और हल्की जलीय बनावट वाला होता है। यह किस्म ताजा उपभोग के साथ-साथ सुखाने और संरक्षित करने (प्रिजर्व) के लिए भी व्यापक रूप से उपयोग की जाती है।

आलूबुखारा/प्लम पौध का प्रवर्धन

भारत में आलूबुखारे का प्रसार सामान्यत: अंकुर मूलवृंतों पर किया जाता है। इसके लिए प्राय: जंगली खुबानी का उपयोग होता है, जबकि कभी-कभी आड़ू और बेहमी के बीजों को भी लिया जाता है।

हालाँकि, पौधों में एकरूपता, आकार नियंत्रण, शीघ्र परिपक्वता और रोग प्रतिरोधक क्षमता प्राप्त करने हेतु अब क्लोनल मूलवृंतों को प्राथमिकता दी जाती है।

पिक्सी

यह एक अर्ध-बौना मूलवृंत है जो शीघ्र परिपक्वता प्रदान करता है। इस मूलवृंत पर उगाए गए पेड़ों को शुरुआती 4-5 वर्षों तक सहारा देने की आवश्यकता होती है। अच्छी मिट्टी और उन्नत सिंचाई की व्यवस्था आवश्यक है। आकार की दृष्टि से मूलवृंत से उगाए गए पेड़ों का आकार सेब के M26 मूलवृंत के बराबर माना जा सकता है।

मिरॉब्लान

यह एक अत्यधिक शक्तिशाली मूलवृंत

ब्लैक स्प्लेंडर

यह किस्म तेज वृद्धि के साथ फैलाव लिए होती है। इसे 'काले शानदार प्लम' के रूप में जाना जाता है। इसके फल काली त्वचा और लाल गूदे वाले होते हैं। आकार में ये सांता रोसा से बड़े होते हैं तथा अपेक्षाकृत जल्दी परिपक्व हो जाते हैं। इनका स्वाद हल्का खट्टा/तीखा (टार्ट फ्लेवर) होता है।

ब्लैक एंबर

इस किस्म के फल बड़े आकार के होते हैं, जिनकी त्वचा लगभग काले रंग की तथा गूदा पीला होता है। गूदा रसदार और मीठा होता है। यह किस्म पाई, पुडिंग और सॉस जैसे प्रसंस्करित उत्पादों के लिए श्रेष्ठ है। सांता रोसा की तुलना में इसकी शेल्फ लाइफ बेहतर होती है। अनुशंसित परागणक सांता रोसा है।

ब्लैक एंबर

है जो शीघ्र परिपक्वता देता है। एक बार जम जाने के बाद यह उच्च उत्पादकता प्रदान करता है। यह परिवर्तनशील मिट्टी की परिस्थितियों के अनुकूल है, लेकिन आड़ू के अंकुर की तुलना में इसमें फल पकने में थोड़ी देरी होती है।

क्रिमस्क 1

यह एक बौना मूलवृंत है। इसमें जड़-गाँठ सूत्रकृमि और घाव सूत्रकृमि के प्रति कुछ प्रतिरोध पाया जाता है। इस पर उगाए गए पौधों को सहारा देना अनुशंसित है।

वेविट

यह वांगेनहाइम नामक यूरोपीय प्लम की किस्म का अंकुर है। अधिकांश अन्य प्लम मूलवृंतों के विपरीत यह यूरोपीय प्लम होने के कारण प्लम के लिए उत्कृष्ट अनुकूलता प्रदर्शित करता है, और खुबानी के लिए भी उपयोगी है। इस मूलवृंत पर उगाए गए पेड़ मानक पेड़ के लगभग 53-65% ऊँचाई (लगभग 3-3.5 मीटर) तक पहुंचते हैं और इन्हें सहारा देने की आवश्यकता नहीं होती।

वीवीए-1

इस मूलवृंत पर उगाए गए पेड़ मानक पेड़ के लगभग 42-53% (लगभग 2.5-3 मीटर) ऊँचे होते हैं और इन्हें सहारा देने की आवश्यकता होती है। पिक्सी की तुलना में, यह मूलवृंत कम उम्र में बड़े फल और अधिक उपज देता है।

प्लम में लगने वाले प्रमुख रोग

प्लम में पाए जाने वाले प्रमुख रोगों में जीवाणु कैंकर, भूरा सड़न, काली गाँठ, जीवाणु धब्बा और प्लम पॉक्स वायरस (शार्का) शामिल हैं। प्रत्येक रोग के विशिष्ट लक्षण होते हैं, जैसे घाव, कैंकर, पत्तियों की विकृति और फलों पर धब्बे।

भूरा सड़नः यह मोनिलिनिया प्रजाति के कवक के कारण होने वाला रोग है, जो फलों, तनों और शाखाओं पर घाव और सड़न उत्पन्न करता है।

काली गाँठः यह एपियोस्पोरिना मोर्बोसा नामक कवक के कारण होता है, जिसके परिणामस्वरूप शाखाओं पर गांठ और विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं।

जीवाणु कैंकरः यह स्यूडोमोनास सिरिंजे नामक जीवाणु के कारण होता है, जिससे घाव, कैंकर और पत्तियों पर धब्बे बनते हैं।

जीवाणु धब्बाः यह जैंथोमोनस कैम्पेस्ट्रिस पी.वी. प्रूनी के कारण होता है, जो पत्तियों और फलों पर घाव और धब्बे उत्पन्न करता है।

प्लम पॉक्स वायरस (शार्का): यह एफिड्स द्वारा फैलने वाला वायरस है, जो पत्तियों और फलों पर पीलापन, छल्ले और विकृतियाँ उत्पन्न करता है।

प्रबंधन

प्लम में रोग और कीटों के प्रभावी प्रबंधन के लिए एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इसमें प्रतिरोधी किस्मों का चयन, उचित स्वच्छता, उन्नत कृषि पद्धतियाँ, घावों का उपचार और वायरस फैलाने वाले एफिड्स जैसे वाहकों का नियंत्रण शामिल है। प्रभावी प्रबंधन के लिए निम्न रणनीतियों का संयोजन अनुशंसित है:

- **प्रतिरोधी किस्में**

  प्लम की ऐसी किस्में लगाएँ जो सामान्य रोगों के प्रति स्वाभाविक रूप से प्रतिरोधी हों।

अर्ली इतालवीः यह किस्म बड़े, आयताकार और अंडे के आकार के फलों के लिए जानी जाती है। फलों की त्वचा बैंगनी-नीली होती है जिस पर पाउडर जैसी परत दिखाई देती है। यह फ्रीस्टोन प्रकार की किस्म है, जिसमें ग्रीन-एम्बर रंग का रसदार और मीठा गूदा पाया जाता है। यह स्व-उपजाऊ और सर्दियों के लिए सहनशील किस्म है। फल ताजा खाने, सुखाने और डिब्बाबंदी, तीनों के लिए उपयुक्त हैं। इसकी परिपक्वता इतालवी प्रून से लगभग 15 दिनों पहले होती है।

ग्रीन गेज

ग्रीन गेज एक अत्यधिक मूल्यवान यूरोपीय प्लम किस्म है। इसके फल पीले-हरे रंग के, अंडाकार आकार वाले, दृढ़ और कोमल होते हैं। इसका गूदा रसीला और अत्यंत मीठा होता है, जो इसे स्वाद की दृष्टि से विशेष बनाता है। यह किस्म ताजा उपभोग, बेकिंग, प्रिजर्व तथा डिब्बाबंदी सभी के लिए उपयुक्त है।

ग्रीन गेज

- **स्वच्छता**

  रोगजनकों की आबादी को कम करने के लिए संक्रमित शाखाओं और गिरे हुए फलों को छाँटकर नष्ट कर दें।

- **घाव का उपचार**

  फफूंद के संक्रमण को रोकने के लिए वृक्ष के घावों पर बोर्डो मिश्रण लेप या कॉपर आधारित कवकनाशी लगाएँ।

- **कीट नियंत्रण**

  उपयुक्त कीटनाशकों का उपयोग करके और उनकी आबादी का प्रबंधन करके एफिड्स जैसे कीट वाहकों, जो प्लम पॉक्स वायरस फैला सकते हैं, को नियंत्रित करें।

- **कृषि पद्धतियाँ**

  रोग को रोकने के लिए संक्रमित भागों को हटा दें। इसके अतिरिक्त उचित वायु संचार के लिए वृक्षों की छंटाई करें। फल की कटाई सही समय पर करें, क्योंकि देर से कटाई करने से फल मक्खी का प्रकोप बढ़ सकता है।

- **रासायनिक नियंत्रण**

  कवकनाशीः कवक रोगों और सड़न को नियंत्रित करने के लिए कॉपर सल्फेट, कार्बेण्डाजिम या मैंकोजेब जैसे कवकनाशी का उपयोग करें।

  ड्रेंचिंगः मानसून के दौरान जड़ सड़न को रोकने के लिए वृक्ष के चारों ओर मिट्टी के बेसिन में विशिष्ट कवकनाशी का छिड़काव करें।

सितंबर-अक्टूबर के बागवानी कार्य

हरे कृष्ण[1], **अरविंद कुमार सिंह**[2], **शुभम कुमार तिवारी**[1], **राघवेंद्र प्रताप सिंह**[1] और **शेखर सिंह**[1]

शरद ऋतु को परिवर्तन, संतुलन और प्राकृतिक सौंदर्य की ऋतु माना जाता है। इसका आरंभ उस समय होता है जब सूर्य आकाशीय भूमध्य रेखा को पार करता है, जिसे शारदीय विषुव कहते हैं। यह प्रतिवर्ष 22 या 23 सितंबर को आता है। इस समय दिन और रात की अवधि लगभग समान होती है। इस ऋतु में गर्मी और आर्द्रता का प्रभाव कम होने लगता है तथा वृक्षों की पत्तियाँ झड़ने लगती हैं। इसलिए इसे पतझड़ का मौसम भी कहा जाता है। भारत में शरद ऋतु मुख्यतः सितंबर से अक्टूबर के बीच आती है, जो पारंपरिक पंचांग के अनुसार अश्विन और कार्तिक माह में पड़ती है। यह समय फसलों की कटाई/तुड़ाई का होता है, इसलिए इसे कटाई या तुड़ाई की ऋतु के रूप में भी जाना जाता है। इस अवधि में मनाए जाने वाले ओणम (केरल), नुआखाई (ओडिशा) और छठ पूजा (बिहार) जैसे पर्व न केवल कृषि उपज के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, बल्कि सांस्कृतिक गौरव, सामाजिक समरसता और सामूहिक उत्सवधर्मिता का भी परिचायक हैं। इन उत्सवों के माध्यम से लोग प्रकृति, अन्न और एक-दूसरे के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। शरद ऋतु के दौरान प्रकृति मानो पीले, नारंगी और सुनहरे रंगों से अलंकृत हो उठती है। पत्तों का रंग बदलना इस बात का संकेत होता है कि ऋतु अब शीतकाल की ओर अग्रसर है। दिन छोटे होने लगते हैं, जिससे वृक्षों की जैव-क्रियाओं में परिवर्तन होता है जैसे क्लोरोफिल का अपघटन होना और कैरोटिनॉइड जैसे रंगद्रव्यों का उभरना। सूर्य की स्थिति और तापमान में कमी इस रंग-परिवर्तन की तीव्रता को प्रभावित करते हैं।

फलदार वृक्षों के लिए शरद ऋतु अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यह समय उनकी जड़ों के विकास और पोषक तत्वों के संचय का होता है। यह संचित ऊर्जा शीत ऋतु से सुरक्षित होकर वसंत ऋतु में नई और स्वस्थ वृद्धि को सुनिश्चित करती है। कलिकाओं में शर्करा, अमीनो अम्ल और सूक्ष्म पोषक तत्वों का संचय अगले वर्ष के अच्छे फलन के लिए आवश्यक होता है। बागवानी की दृष्टि से भी यह ऋतु विशेष महत्व रखती है, क्योंकि इसी समय शीत ऋतु से पूर्व की आवश्यक कृषि तैयारियाँ की जाती हैं। इस अवधि में बागों में अनेक विशिष्ट कर्षण क्रियाएँ अपनाई जाती हैं, जिनका क्रमवार विवरण प्रस्तुत है:

आम

बागों में रिक्त स्थानों की पूर्ति का कार्य शरद ऋतु की इस द्विमाही में अवश्य पूरा कर लेना चाहिए। सितंबर माह में हरी खाद हेतु बोई गई फसल को मृदा में पलट कर जुताई कर दें, ताकि उसमें जैविक पदार्थ अच्छी तरह मिल सकें। आम के वृक्षों में गोदार्ति रोग की रोकथाम के लिए प्रति वृक्ष 50 ग्राम जिंक सल्फेट, 250 ग्राम कॉपर सल्फेट, 125 ग्राम बोरेक्स और 100 ग्राम बुझा हुआ चूना (10 वर्ष या अधिक आयु के पौधों के लिए) भूमि में मिलाना चाहिए, तथा वर्षा न होने की स्थिति में हल्की सिंचाई अवश्य करें।

इसी माह श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) और लाल रतुआ (रेड रस्ट) रोग से बचाव हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि प्ररोह शोथ (शूट गॉल) कीट का प्रकोप दिखाई दे तो थायोमेथोक्साम 1 ग्राम/लीटर पानी + प्रोफेनोफॉस 2 मि.ली./लीटर पानी

[1]भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश- 221 305; [2]केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र, (केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान), वेजलपुर (गोधरा), गुजरात-389 340

+ स्टिकर 1- 2 मि.ली./लीटर पानी का छिड़काव करें।

अक्टूबर माह में वृक्षों के नीचे की भूमि की सफाई कर लेनी चाहिए। यदि बाग में खरपतवार हों तो उन्हें निकाल देना चाहिए आवश्यकता हो तो हल्की सिंचाई भी करें। रोग अथवा कीटग्रस्त और कमजोर शाखाओं की छंटाई करने के बाद ब्लाइटॉक्स-50 (3 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव करना लाभकारी होता है।

गुच्छा रोग की स्थिति में प्रभावित भागों को काटकर नेप्थेलीन एसिटिक अम्ल (200 पीपीएम) का छिड़काव करें। जल निकास की उचित व्यवस्था हेतु इस माह में नालियां बना लेनी चाहिए। जिंक की कमी दिखाई देने पर 0.4 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करें। आम के वृक्षों में पुष्पण को नियंत्रित करने के लिए पैक्लोब्यूट्राजोल (4-5 मिलीलीटर कल्टार प्रति मीटर वृक्ष छत्रक व्यास) को ड्रिप लाइन में बने खंदकों में डालना चाहिए। इस अवधि में प्रोहमरण (डाई बैक) के लक्षण भी प्रकट हो सकते हैं, जिसमें सूखी शाखाओं को हरे भाग से 5-10 सेंटीमीटर भीतर से काटना चाहिए। इसके पश्चात कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

फोमा ब्लाइट (झुलसा रोग) के संक्रमण की स्थिति में भी यही छिड़काव प्रभावी होता है। अक्टूबर में प्रति वृक्ष 50 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस और 500 ग्राम पोटाश देना चाहिए, जिससे वृक्षों को आवश्यक पोषण मिल सके और अगली ऋतु में बेहतर वृद्धि हो।

आम

केला

यदि मानसून में नए बागों की स्थापना का कार्य पूरा नहीं हो सका है, तो उसे सितंबर-अक्टूबर माह में अवश्य पूरा कर लेना चाहिए। इसके लिए लगभग 1.5 से 2.0 किलोग्राम भार वाले स्वस्थ अंत:भूस्तारी (प्रकंद) का चयन करें, जो तलवार की आकृति के हों, क्योंकि इनसे उत्पन्न फल बेहतर गुणवत्ता के होते हैं। जहां आवश्यकता हो, वहां सड़े हुए या अंकुरित प्रकंदों को हटाकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी चाहिए।

रोपण से पूर्व प्रकंदों की जड़ों और सड़े हुए भागों को काट देना चाहिए तथा कंद से लगभग 20 सेंटीमीटर ऊपर छद्म तने (स्यूडोस्टेम) को हटा देना चाहिए। रास्थली, मोनथन, विरुपाक्षी और अन्य म्लानि-संवेदनशील किस्मों में विल्ट रोग से बचाव के लिए प्रकंदों के संक्रमित भागों को छीलकर 0.2 प्रतिशत कार्बेण्डाजिम के घोल में 15-20 मिनट तक डुबोना चाहिए।

इस अवधि में दक्षिण भारत के क्षेत्रों में खीरे और चौलाई की खेती भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। सितंबर माह में परिपक्व फलों के गुच्छों को तोड़कर भंडारण हेतु पकाया जाना चाहिए और बाजार में भेजने की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। इसी माह प्रति पौधा 55 ग्राम यूरिया पौधे से लगभग 50 सेंटीमीटर की दूरी पर घेरे में डालकर हल्की गुड़ाई के साथ मृदा में मिला दें। अक्टूबर माह में अवांछित पत्तियों को निकालकर बाग की सफाई कर लें तथा आवश्यकता अनुसार हल्की सिंचाई करें।

सूत्रकृमियों से बचाव

प्रकंदों को 40 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन 3जी कणिकाओं के साथ उपचारित करना उपयुक्त रहता है। इसके लिए प्रकंदों को 4 भाग मृदा और 5 भाग पानी वाले घोल में डुबोकर कार्बोफ्यूरॉन का छिड़काव करें। वैकल्पिक रूप से, कंदों को धूप में 2 सप्ताह तक खुला छोड़ दें अथवा गर्म पानी (55 डिग्री सेल्सियस) में 10 मिनट तक डुबोएँ। जैविक नियंत्रण हेतु अंत:भूस्तारी की छंटाई करें और प्रत्येक अंत:भूस्तारी पर स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 20 ग्राम की दर से छिड़काव करें। इसके बाद मिट्टी में स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर के साथ 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद डालें। बगीचे में सनई अथवा गेंदे के फूल से अंत:सस्यन भी सूत्रकृमि की संख्या को बढ़ने से रोकता है। वर्तमान में ऊतक संवर्धित पौधे अपनी रोगमुक्त प्रकृति और उच्च उपज क्षमता के कारण तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। एक आदर्श ऊतक संवर्धन पौधा लगभग 25-30 सें.मी. लंबा होता है, जिसमें 5-6 पूर्ण विकसित पत्तियाँ उचित अभिविन्यास के साथ होती हैं, और उनमें कोई विकृति या पीली धारियाँ नहीं होनी चाहिए।

केले में फलन

पके हुए फलों को तोड़कर बाजार में भेजें।

भृंग की रोकथाम के लिए मेनमा (केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान, केरल द्वारा विकसित जैवनाशक, जो कसावा की पत्तियों से प्राप्त सायन- ग्लाइकोसाइड्स से बनाया गया है) का प्रयोग किया जा सकता है। यह भृंग शिशु और वयस्कों के प्रबंधन के लिए पौधे में टीकाकरण उपयोगी है। इसके अतिरिक्त, प्रति पौधा आधा कि.ग्रा. नीम की खली या 250 ग्राम अरंडी की खली को तने के चारों ओर मिट्टी में मिला दें। कोस्मोल्युर फेरोमोन प्रपंच (5 प्रति हैक्टर) का उपयोग भी भृंग प्रबंधन में लाभकारी है। यदि भृंग का प्रकोप अधिक हो तो क्लोरोपाइरीफॉस 2.5 मि.ली./लीटर के साथ सहायक पदार्थ 1 मि.ली./लीटर मिलाकर केले के तने पर लगाएं।

भृंग नियंत्रण के लिए प्रपंच तैयार करते समय केले के तनों को 90 सें.मी. लंबाई में काटकर अनुदैर्ध्य रूप से दो भागों में विभाजित करें और उनकी कटी हुई सतह पर कीटरोगजनक फफूंद *ब्यूवेरिया बेसियाना* (25 ग्राम प्रति प्रपंच) अथवा कीटरोगजनक सूत्रकृमि हेटेरोरहैबडाइटिस इंडिका (25 मि.ली. प्रति प्रपंच) का लेप करें। इन प्रपंचों को

केले के पौधों के आधार के पास 100 प्रपंच प्रति हैक्टर की दर से रखें और एकत्र भृंगों को नष्ट कर दें।

मेटाराइजियम माजुस को थियामेथोक्सम (0.01 प्रतिशत) और कार्टैप हाइड्रोक्लोराइड (0.03 प्रतिशत) के साथ छिड़काव द्वारा भी भृंग का नियंत्रण किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में भृंग-प्रकोप अधिक हो वहाँ रोबस्टा, कर्पूरवल्ली, मालभोग, चम्पा, और अडुक्कर जैसी केले की किस्मों की खेती से बचें। इनके स्थान पर पूवन, कदली, कुन्नन और पूमकल्लि जैसी कम संवेदनशील किस्मों की खेती करें।

अमरूद

अमरूद से लदी डाली

पुराने बागों में फलों की तुड़ाई के बाद पोषण प्रबंधन की विशेष आवश्यकता होती है, अतः इस समय प्रति पेड़ 25 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश प्रत्येक की 0.5 किलोग्राम मात्रा अवश्य दें। उपज को बढ़ावा देने के लिए पत्तियों पर 1 प्रतिशत यूरिया और 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव करना भी लाभकारी होता है। इस अवधि में फलों की थैलाबंदी एक महत्वपूर्ण कृषि क्रिया है, जो कम लागत वाली सरल तकनीक है और जिसे किसान आसानी से अपना सकते हैं। अमरूद जैसे फलों की गुणवत्ता सुधारने और पकने की प्रक्रिया को सुगम बनाने हेतु तुड़ाई से लगभग एक माह पूर्व, अथवा फल सेट होने के 30-50 दिनों के भीतर, जब फल बेर के आकार (1.5-2 इंच) के हों, सामान्य अखबार का उपयोग करके थैलाबंदी की जा सकती है। यह तकनीक फलों को रोगों और पक्षियों से होने वाली क्षति से भी बचाती है। स्टूलिंग, इनार्चिंग या गूटी विधि से तैयार पौधों को पौधशाला में स्थापित करना चाहिए।

सघन बागवानी में पौधों को बौना बनाए रखने के लिए नियमित छंटाई आवश्यक होती है, जो मुख्यतः मई-जून, सितंबर-अक्टूबर तथा जनवरी-फरवरी माह में की जाती है। सामान्य बागवानी में भी बीती ऋतु के अंतिम विकसित प्ररोहों को 10-15 सेंटीमीटर तक छाँटना उपयुक्त रहता है। श्याम व्रण रोग से बचाव के लिए सितंबर माह में प्रत्येक 7-10 दिनों के अंतराल पर बोर्डो मिश्रण (3:3:50) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव करना चाहिए। यदि फलों पर फाइटोफ्थोरा जनित फल गलन के लक्षण दिखाई दें, तो रिडोमिल (0.2 प्रतिशत) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

तना बेधक की समस्या होने पर छेदों को साफ कर पेट्रोल में भीगी रूई भरें अथवा चिकनी मिट्टी से बंद कर दें, जिससे कीट नष्ट हो जाएं। बोरॉन की कमी, जैसे पत्तियों का छोटा होना, फलों का कठोर और फटना आदि लक्षण दिखाई देने पर पुष्पण और फल जमाव की अवस्था में 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का पर्णीय छिड़काव करें। अक्टूबर माह में पके हुए फलों को तोड़कर बाजार भेजने की समुचित व्यवस्था करें और साथ ही साथ खरपतवारों को हटाकर उद्यान की पूरी सफाई सुनिश्चित करें।

पपीता

अक्टूबर माह पपीते के पौधों की रोपाई के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है। इसलिए इस अवधि में तैयार पौधों का रोपण अवश्य कर लेना चाहिए। बीज से तैयार अथवा ऊतक संवर्धित पौध को 1.8 मीटर की दूरी पर 45×45×45 सेंटीमीटर आकार के पूर्व-खुदे गड्ढों में लगाया जाना चाहिए। रोपण के तुरंत बाद सिंचाई करें। इसके पश्चात हर 2-3 दिनों के अंतराल पर सिंचाई तब तक करते रहें जब तक पौधा पूर्णतः स्थापित न हो जाए। द्विलिंगी किस्मों जैसे पूसा ड्वार्फ, पूसा जायंट, पूसा नन्हा, पंत पपीता, कोयंबटूर-1, 2 और 7 आदि के कम से कम तीन पौधे एक-दूसरे से लगभग 15 सेंटीमीटर की दूरी पर एक ही गड्ढे में लगाने चाहिए। जबकि उभयलिंगी किस्मों जैसे पूसा डिलिशियस, पूसा मजेस्टी, कुर्ग हनीड्यू आदि की रोपाई एक गड्ढे में एक ही पौधे की करनी चाहिए। विदेशी किस्मों में सोलों, सनराइज, सिन्टा और रेड लेडी प्रमुख हैं। इनमें रेड लेडी एक उच्च उत्पादक किस्म मानी जाती है, जिससे एक पौधे से लगभग 100 किलोग्राम तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। पौधों को सड़न रोग से सुरक्षित रखने के लिए जल निकास की उचित व्यवस्था आवश्यक है तथा बोर्डो मिश्रण (2.5 प्रतिशत) का छिड़काव करें। यदि सितंबर माह में मिलीबग का प्रकोप दिखाई दे, तो जैविक नियंत्रण हेतु परजीवी *एसेरोफेगस पापायी* को 25-50 की संख्या में प्रत्येक प्रभावित पौधे पर छोड़ें, जिससे हानि को नियंत्रित किया जा सके।

पपीते में भरपूर फलन

लीची

सितंबर माह में यदि अगस्त में रोपण कार्य पूर्ण नहीं हो पाया हो, तो इसे अनिवार्य रूप से इस अवधि में पूरा कर लेना चाहिए।

साथ ही गूटी विधि से तैयार किए गए पौधों को भी सितंबर में पेड़ से अलग कर पौधशाला में स्थानांतरित करना चाहिए। यदि इस दौरान पौधों की पत्तियाँ कांस्य रंग की दिखाई देने लगें, तो प्रति पौधा 25 ग्राम जिंक सल्फेट को मिट्टी में मिलाना चाहिए या फिर 0.4 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव फलों के विकास की अवस्था में 2 से 3 बार करना चाहिए। सितंबर-अक्टूबर माह लीची के बागों में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन हेतु उपयुक्त होते हैं।

एक वर्ष की आयु के पौधे के लिए 5 किलोग्राम गोबर/कंपोस्ट खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फेट और 50 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है, जबकि 10 वर्ष या उससे अधिक उम्र के पौधों के लिए यह मात्रा क्रमशः 50 किलोग्राम गोबर खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फेट और 500 ग्राम पोटाश प्रति पौधा हो जाती है। इस समय बागों में हल्की जुताई भी करनी चाहिए, जिससे न केवल खरपतवार का नियंत्रण हो सके बल्कि मिट्टी में उचित वातन भी बना रहे। पुराने बागों में प्रायः तना छेदक कीट की समस्या बनी रहती है, अतः इसकी रोकथाम के लिए अमरूद में अपनाई गई विधियों का पालन करें।

अनार

सितंबर में पत्तियाँ खाने वाले भृंग की रोकथाम के लिए बुप्रोफेजीन का छिड़काव 1.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से करें, जबकि अक्टूबर में छाल खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण हेतु क्लोरोपायरीफॉस का छिड़काव 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर करें। यदि लीची के पौधों में तांबे की कमी के लक्षण, जैसे पत्तियों का असामान्य छोटा आकार, दिखाई दें तो अक्टूबर में 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से कॉपर सल्फेट का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर दो बार करना चाहिए।

पुष्पण को प्रेरित करने के लिए अक्टूबर से दिसंबर के मध्य एथरेल का 150 पी.पी.एम. पर 3-4 बार छिड़काव किया जा सकता है या फिर सितंबर के प्रथम पखवाड़े में लीची के प्राथमिक प्ररोहों पर 2 से 4 मिलीमीटर चौड़े वलयन बनाए जा सकते हैं, जो पुष्प प्रेरण में सहायक होते हैं।

अनार

सितंबर-अक्टूबर के दौरान ही हस्त बहार की फसल में पुष्पण होता है। पुष्पण की प्रारम्भिक अवस्था में ही 0.25 प्रतिशत जिंक सल्फेट, आयरन सल्फेट, मैंग्नीज सल्फेट एवं 0.2 प्रतिशत बोरॉन का पर्णीय छिड़काव करें, जिससे उत्पादकता तथा गुणवत्ता में वृद्धि होती है और साथ ही फलों का फटना भी कम होता है। इस माह 6 वर्ष या अधिक आयु के पौधों में प्रति पौधा, खाद और ऊर्वरक की तीसरी मात्रा (10 किलोग्राम गोबर की खाद, 200 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम फॉस्फोरस एवं 400 ग्राम पोटाश) दें। सितम्बर में मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। सामान्यतया 20 लीटर पानी प्रति पौधा ड्रिप सिंचाई विधि द्वारा देना चाहिए।

सितंबर माह में, खरपतवार और जमीन के नीचे से निकलने वाले अंकुरों को निकाल दें। बैक्टीरियल ब्लाइट, कवक रोगों और हानिकारक कीटों से बचने के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.5 ग्राम प्रति लीटर जल में) + मैंकोजेब 75 घुलनशील चूर्ण (2 ग्राम प्रति लीटर जल में) में टीपोल या ट्वीन 20 (0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर की दर से) का छिड़काव करें।

अक्टूबर में खरपतवार और भूमि के

अंगूर

महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में फ्रूट प्रूनिंग (फलन छंटाई) का कार्य 15 अक्टूबर तक कर लिया जाना चाहिए। फ्रूट प्रूनिंग के दौरान परिपक्व प्ररोहों को गांठों के पश्चात उप प्ररोहों पर अथवा 6-7 कलिका पर सीधे प्ररोहों पर काटा जाना चाहिए। इस अवधि के दौरान, फलों की तुड़ाई के पश्चात अंगूर की बेलों को खाद व उर्वरक देने की समुचित व्यवस्था करें। सितम्बर में भी श्याम व्रण रोग के नियंत्रण के लिए, बाविस्टिन (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें। इस द्विमाही में एचपी ग्रेड खनिज तेल का छिड़काव करें। इस तेल में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड अथवा बोर्डो मिश्रण को भी मिलाकर रतुआ, चूर्णिल और मृदुल आसिता का नियंत्रण किया जा सकता है। अक्टूबर में अंगूर के बाग की सफाई कर इसे खरपतवारमुक्त रखने की व्यवस्था करें। हल्की सिंचाई के पश्चात, बागों में निराई-गुड़ाई अवश्य करें।

अंगूर

कीट प्रबंधन

अक्टूबर माह में फल बेधक और फल चूसने वाले कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। इसलिए, इस दौरान, फलों की थैलाबंदी और पौधों को जालों से ढक देना चाहिए। फल बेधक कीट हेतु प्रभावी रासायनिक नियंत्रण विकल्पों में लैम्ब्डा-सायहेलोथ्रिन, सायपरमेथ्रिन, इंडोक्साकार्ब और प्रोफेनोफॉस सम्मिलित हैं, जिन्हें अनुशंसित अंतराल पर छिड़काव किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, स्पिनोसैड, क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल और फ्लूबेन्डामाइड फलों में कीट संक्रमण के नियंत्रण में प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं।

चीकू

सितम्बर में दीमक से बचने के लिए क्लोरोपाइरीफॉस (2 मिलीलीटर प्रति लीटर जल में) का छिड़काव करें। खरपतवार और जमीन के नीचे तथा मुख्य शाखा के निचले हिस्से से निकलने वाले अंकुरों को निकाल दें। अक्टूबर में बाग में मृत पौधों की जगह नए पौधे लगाएं। मूलवृंत से निकलने वाली शाखाओं को निकाल दें। किसान बाग की बची हुई खाली जगह में सब्जियां इत्यादि लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। पौधे की आयु के अनुसार फॉस्फोरस और पोटाश दें। घास-पात को निकालते रहें। बाग में साफ-सफाई बनाए रखें ताकि कीटों से होने वाली हानि से बचा जा सके। मुख्य तुड़ाई होने के पश्चात पौधों पर जो फल आते हैं, उन्हें हटा देना चाहिए।

नीचे से निकलने वाले अंकुरों को निकाल दें। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। इन महीनों के दौरान थ्रिप्स का प्रकोप भी चरम पर होता है जिसके नियंत्रण के लिए फिप्रोनिल/ इमिडक्लोप्रिड/ लैम्डा साइहाइलोथ्रिन का पुष्पण छिड़काव करें।

अनन्नास

सितम्बर में अनन्नास में रोग या कीट से ग्रस्त भागों और पौधों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। घास-पात को हटाना चाहिए और बागों में पलवार का प्रबंधन करें जिससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे एवं खरपतवार भी नियंत्रित रहें। बाग की खाली जगह में सब्जियां इत्यादि लगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। फलों की सुरक्षा के लिए थैलाबंदी करना लाभदायक है। सूरज के प्रकाश से जली हुई, जमीन पर गिरी हुई पत्तियों और क्षतिग्रस्त फलों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए।

अक्टूबर में अनन्नास फसल के अवशेषों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। बारिश बहुत अधिक होने पर पौधारोपण नहीं करना चाहिए। अतिरिक्त जल की निकासी की व्यवस्था करनी चाहिए। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। अगर अगस्त में न दे सके हों तो सितंबर माह में नाइट्रोजन और पोटाश की दूसरी मात्रा दें। नीम के तेल की 2 प्रतिशत मात्रा का छिड़काव करें। जिन फसलों में कीट तथा रोग कम लगते हैं, उन्हें बाग के सीमा के पास लगाएं।

कटहल

अक्टूबर में तैयार हो चुके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए तथा इसी माह फलों से बीज निकालकर पौधशाला में बुआई करें। चूर्णिल रोग का प्रकोप होने पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में) का छिड़काव करें तथा मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए वृक्षों पर आम की भांति पॉलीथीन लगाएं।

आंवला

यदि नए आंवले के बाग अगस्त के अंत तक न लगाए जा सके हों, तो सितंबर के आरंभ में यह कार्य अवश्य पूर्ण कर लेना चाहिए। आंवला में फल सड़न रोग की रोकथाम हेतु ब्लाइटॉक्स 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें। शुष्क विगलन रोग, जिसमें अक्टूबर-नवम्बर माह में 80-90 प्रतिशत फल अंदर से काले होकर गिर जाते हैं, से बचाव के लिए 6 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

छाल खाने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए मिट्टी के तेल अथवा पेट्रोल में रूई भिगोकर उसे तार की सहायता से कीट द्वारा बनाए गए छिद्रों में डालें और फिर उन्हें चिकनी मिट्टी से बंद कर दें। शूट गॉल से ग्रसित टहनियों को काटकर जला देना चाहिए तथा शुष्क विगलन रोग की रोकथाम हेतु बोरेक्स के घोल का पुनः छिड़काव करें।

अक्टूबर माह में आंवले के बागों में सिंचाई हेतु नालियों का निर्माण करें। इसी अवधि में तना छेदक कीट का प्रकोप भी देखा जा सकता है, जिसकी रोकथाम के लिए नीम की गिरी का अर्क (5 प्रतिशत) अथवा क्विनालफॉस 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें। नियमित रूप से प्रत्येक 20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करने से फलों की वृद्धि बेहतर होती है। इस दौरान बाग में खाद एवं उर्वरकों का प्रबंधन भी किया जाना चाहिए। लगभग 10 वर्ष पुराने आंवले के वृक्ष के लिए 800 ग्राम नाइट्रोजन 1 किलोग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 1 से 1.5 किलोग्राम पोटाश प्रतिवर्ष की दर से देना चाहिए, जिसमें से आधी मात्रा अक्टूबर माह में प्रदान करें। इसके अतिरिक्त, प्रति वृक्ष 30-40 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद भी दें, जबकि छोटे पौधों के लिए यह मात्रा 15-20 किलोग्राम प्रति वृक्ष पर्याप्त होती है।

लोकाट

नए बागों की स्थापना का कार्य सितंबर माह में हर स्थिति में पूर्ण कर लेना चाहिए। इस अवधि में पुराने बागों में पुष्पण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है, अतः किसी भी प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे परागणकर्ता प्रभावित हो सकते हैं। परागणकर्ताओं की सक्रियता में बाधा आने से परागण की क्रिया प्रभावित होगी, जिसका प्रतिकूल प्रभाव फलन पर पड़ेगा। लोकाट की किस्मों जैसे गोल्डन येलो और पेल येलो के लिए, बगीचे में कैलिफोर्निया एडवांस किस्म को परागण किस्म के रूप में अवश्य लगाना चाहिए, क्योंकि इन किस्मों में स्वपरागण की क्षमता नहीं होती है।

बेर

बाग की सफाई करके खरपतवार निकाल दें। अक्टूबर में बेर में चूर्णिल रोग के प्रकोप की आशंका होती है। इसकी रोकथाम के लिए केराथेन (1 मिलीलीटर प्रति लीटर) का छिड़काव करें। केराथेन के अतिरिक्त बाविस्टिन (0.05 प्रतिशत) अथवा सल्फर चूर्ण (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव भी किया जा सकता है। बेर में सितम्बर से पुष्पण की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। चूंकि इसके परागकण चिपचिपे होते हैं, और परागण मुख्यतः मधुमक्खियों द्वारा होता है, अतः बेर में अच्छी पैदावार सुनिश्चित करने के लिए दो मधुमक्खियों के छत्ते प्रति एकड़ रखें। इससे किसानों को फलों के साथ शहद की अतिरिक्त आमदनी भी हो सकेगी।

बेर में पुष्पण

नीबूवर्गीय फल

कैंकर रोग से छुटकारा पाने के लिए समन्वित प्रबंधन के लिए जैंथोकट्रोल जैसे जैविक उत्पादों को टैगमाइसिन या

प्लैंटोमाइसिन जैसे जीवाणुनाशी रसायनों के साथ मिलाकर उपयोग करें। पर्णसुरंगी कीट से बचाव के लिए पौधशाला में इमिडाक्लोप्रिड और थायमेथोक्साम अथवा नीम के तेल का छिड़काव करें। फलों की तुड़ाई-पूर्व गिरना एक गंभीर समस्या है। अत: सितम्बर में 10 पी.पी.एम. 2,4-डी (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव अवश्य करें। सितम्बर में नाइट्रोजन की तीसरी मात्रा पौधों को अवश्य दें। इन फल वृक्षों में लगभग सभी सूक्ष्म तत्वों की विशेष कमी पाई जाती है जिसकी पूर्ति के लिए जिंक सल्फेट, मैंग्नीशियम सल्फेट, बोरिक अम्ल, बुझा हुआ चूना (प्रत्येक एक किलोग्राम प्रति 450 लीटर पानी) आदि के संयुक्त घोल का छिड़काव करें। इस घोल में यदि 5 कि.ग्रा. यूरिया डाल लें तो यह नाइट्रोजन की कमी को पूरा करता है।

अक्टूबर में बाग की एक बार जुताई करना आवश्यक तथा लाभप्रद होता है। इस माह यदि कैंकर की समस्या हो तो स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (500 पी.पी.एम.) का छिड़काव करें। नवम्बर में तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें तथा उद्यान की सफाई करके उसे खरपतवारमुक्त रखें। तत्पश्चात निराई-गुराई भी अवश्य करें। यदि फल के झड़ने की समस्या हो तो 2,4 डी (8-10 पी.पी.एम.) का छिड़काव करें।

नाशपाती, आड़ू, खुबानी एवं आलूबुखारा कीट-व्याधि प्रबंधन

आड़ू, खुबानी तथा आलूबुखारा जैसे फलों के पौधों के तनों को नीले थोथे से पोत दें और गोंदार्ति से बचाव हेतु बोरेक्स (0.4 प्रतिशत) का छिड़काव करें। अक्टूबर माह में उद्यान को खरपतवार-मुक्त बनाए रखने के लिए सफाई अवश्य करें। साथ ही, जड़ छेदक कीटों की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस चूर्ण को पौधों के चारों ओर प्रयोग करें। आड़ू में पत्ती मुड़न रोग की रोकथाम हेतु प्रभावित पत्तियों को तोड़कर नष्ट कर दें और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) अथवा कार्बेण्डाजिम (50 ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल का छिड़काव करें।

खजूर

स्ट्रॉबेरी की रोपाई

मैदानी क्षेत्रों के किसान सितंबर माह में खेत की अच्छी तरह जुताई कर लें और 40-50 टन प्रति हैक्टर की दर से सड़ी-गली गोबर की खाद मिलाकर 10 × 3 × 0.5 फीट आकार की क्यारियों का निर्माण करें, ताकि अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में पौधरोपण किया जा सके। खेत की तैयारी के बाद, अक्टूबर के अंत या नवंबर के आरंभ में स्ट्रॉबेरी के पौधों की रोपाई उद्यान में करें।

खजूर में उर्वरण और प्रवर्धन

यदि किसी कारणवश जुलाई-अगस्त में खेतों में रोपण का कार्य पूर्ण न हो सका हो, तो इसे सितंबर माह में अवश्य पूरा कर लें। इसी अवधि में खजूर में खाद और उर्वरक देने का कार्य करना उपयुक्त होता है। साथ ही, सूखी, रोगग्रस्त या अवांछनीय पत्तियों की छंटाई कर दें। बेहतर उत्पादन हेतु भूस्तारी को काटकर अलग करें। किंतु यदि भूस्तारी की संख्या बढ़ानी हो, तो छोटे भूस्तारियों पर मिट्टी चढ़ाने का कार्य सितंबर माह में पूर्ण कर लें।

आशा है कि हमारे प्रिय पाठकों को बागवानी संबंधी उपरोक्त जानकारी उपयोगी और रुचिकर लगी होगी, और वे इन सुझावों का समुचित लाभ उठाकर अपनी बागवानी को और अधिक समृद्ध बनाएँगे। आगामी शीत ऋतु (हेमंत और शिशिर) के दौरान भी कई महत्वपूर्ण कृषि कार्य संपन्न किए जाते हैं, इनकी विस्तृत जानकारी **"फल-फूल"** के अगले अंक में आपके समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। आपसे निवेदन है कि यूँ ही अपना स्नेह और विश्वास बनाए रखें। ■

सेब

रूईया एवं सेंजोस स्केल आदि कीटों की रोकथाम के लिए वसंत के प्रारम्भ में 2 प्रतिशत बागवानी खनिज तेल का छिड़काव करें। सितंबर माह में कीटभक्षी कोक्सिनेला सेप्टमपुंकटाटा कीट (30-50 वयस्क प्रति ग्रसित वृक्ष) को बागान में छोड़ें। कीटों के जैविक नियंत्रण के लिए प्रोस्पाल्टेला पर्निशियोसी तथा एस्पिडियोटोफैगस जैसे लाभकारी परजीवी कीटों की सक्रियता को बढ़ावा दें। सितंबर में ऑक्सीडेमेटोन-मिथाइल 25 ईसी 0.07 प्रतिशत का छिड़काव करें। फलों को तुड़ाई पूर्व गिरने से रोकने हेतु 20 पी.पी.एम. नेप्थेलीन एसिटिक अम्ल (2 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव अगस्त एवं सितम्बर में अवश्य करें। देर से पकने वाली किस्मों के तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। अक्टूबर में ही बीजू पौधे तैयार करने के लिए फलों से बीज निकालकर इनकी बुआई पौधशाला में कर देनी चाहिए। इस माह तने के विभिन्न रोगों का प्रकोप होने पर ब्लाइटॉक्स-50 के घोल का छिड़काव करें।

सेब

एरोपोनिक तकनीक से आलू उत्पादन

देश में बदलती कृषि जरूरतों और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों को देखते हुए, अब पारंपरिक खेती के साथ-साथ आधुनिक और स्मार्ट तकनीकों की ओर कदम बढ़ाए जा रहे हैं। इसी कड़ी में उत्तर प्रदेश के हापुड़ और कुशीनगर जिलों में एरोपोनिक तकनीक से आलू की खेती की शुरुआत होने जा रही है, जो राष्ट्रीय स्तर पर खेती की दिशा में एक अभिनव पहल मानी जा रही है।

हाल ही में सरकार ने आगरा स्थित पेरू आलू अनुसंधान केंद्र की एक नई शाखा को मंजूरी दी है। साथ ही, लगभग 20 करोड़ रुपये की लागत से हापुड़ और कुशीनगर में एरोपोनिक खेती के लिए यूनिट्स तैयार किए गए हैं, जिनमें इसी वर्ष से आलू की खेती शुरू होने जा रही है।

एरोपोनिक तकनीक एक उन्नत कृषि प्रणाली है, जिसमें पौधों की जड़ों को मिट्टी में नहीं बल्कि हवा में लटकाकर पोषक तत्त्वों से युक्त फुहारों के माध्यम से सींचा जाता है। इस विधि में भूमि की आवश्यकता नहीं होती और जल की खपत भी पारंपरिक खेती की तुलना में काफी कम होती है।

आलू की खेती में इस तकनीक का उपयोग करके न केवल उत्पादन क्षमता को 8 से 10 गुना तक बढ़ाया जा सकता है, बल्कि फसल की गुणवत्ता और पोषण स्तर में भी सुधार संभव होता है। यह तकनीक विशेष रूप से शहरी और सीमित भूमि वाले क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

नवाचार का केंद्रबिंदु

हापुड़ के बाबूगढ़ क्षेत्र में स्थापित हो रहा सेंटर ऑफ एक्सीलेंस फॉर पोटेटो देश का एक प्रमुख मॉडल बन सकता है। ढाई एकड़ क्षेत्र में विकसित यह केंद्र, किसानों को प्रशिक्षण, शोध और नई तकनीकों के

प्रदर्शन का मंच प्रदान करेगा। कुशीनगर में भी इसी तरह की इकाई की स्थापना से पूर्वी भारत के किसान भी इससे लाभान्वित होंगे।

विविध सब्जियों की खेती संभव

इस तकनीक के माध्यम से आलू, बल्कि पत्तेदार साग, स्ट्रॉबेरी, खीरा, टमाटर और औषधीय जड़ी-बूटियों जैसी अन्य सब्जियों का भी उत्पादन किया जा सकता है। इसकी खास बात यह है कि लघु स्तर पर भी यह खेती संभव है, जिससे शहरी या सीमित भूमि वाले क्षेत्रों में भी उत्पादन किया जा सकेगा। ■

जलवायु परिवर्तन से बढ़ती परागकण एलर्जी

पिछले कुछ वर्षों में जलवायु परिवर्तन ने न केवल फसलों की उत्पादकता और जल स्रोतों को प्रभावित किया है, बल्कि मानव स्वास्थ्य के लिए भी नई चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। एक महत्वपूर्ण समस्या जो अब तेजी से उभर रही है, वह है परागकण (पोल्लन) से होने वाली एलर्जी। यह एलर्जी छींक, आंखों में जलन, नाक बहना और सांस लेने में तकलीफ जैसे लक्षणों के रूप में सामने आती है और अब यह अधिक तीव्र एवं लंबे समय तक बनी रहती है।

विश्व मौसम संगठन (WMO) और स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार, जलवायु परिवर्तन एलर्जी के मामलों को कई स्तरों पर प्रभावित कर रहा है। जैसे-जैसे तापमान बढ़ रहा है और ऋतुओं में असामान्य बदलाव हो रहे हैं, पौधे समय से पहले फूलने लगे हैं। इससे परागकणों का मौसम लंबा होता जा रहा है और उनकी तीव्रता भी बढ़ रही है।

वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा और तापमान में वृद्धि पौधों को अधिक परागकण छोड़ने के लिए प्रेरित कर रही है। साथ ही, वायु प्रदूषण श्वसन तंत्र को पहले से ही कमजोर बना चुका है, जिससे एलर्जी के लक्षण और अधिक उग्र हो जाते हैं। विशेषज्ञ मानते हैं कि प्रदूषित वातावरण में परागकण अधिक सक्रिय और हानिकारक हो जाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) का अनुमान है कि यदि यही प्रवृत्ति बनी रही, तो वर्ष 2050 तक परागकण एलर्जी की समस्या विश्व स्तर पर एक गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट का रूप ले सकती है। इसका प्रभाव विशेषकर बच्चों, बुजुर्गों और श्वसन संबंधी रोगों से ग्रसित लोगों पर अधिक पड़ेगा।

एलर्जी से निपटने के लिए कई देशों ने अलग-अलग प्रयास शुरू किए हैं। फ्रांस में कुछ क्षेत्रों में एलर्जी गार्डन विकसित किए जा रहे हैं, जहां परागकण उत्पन्न करने वाले स्थानीय पौधों की निगरानी की जाती है, ताकि लोगों को पहले से जानकारी मिल सके कि कौन-सा पौधा कब परागकण छोड़ता है। जापान में अत्यधिक परागकण फैलाने वाले

सीडर पेड़ों को हटाकर उनकी जगह मेपल और फलदार वृक्ष लगाए जा रहे हैं, जो कम एलर्जिक होते हैं। वहीं, स्विट्जरलैंड में मौसम विभाग और चिकित्सा विशेषज्ञ मिलकर एलर्जी मैप्स तैयार कर रहे हैं, जिससे लोग अधिक परागकण वाले क्षेत्रों से बच सकें।

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न यह अदृश्य संकट ग्रामीण भारत के लिए भी गंभीर चुनौती बनता जा रहा है। किसानों और आम नागरिकों को इसके प्रति सजग रहने की आवश्यकता है। पर्यावरणीय संतुलन, पौधों की विविधता और स्वास्थ्य सावधानियों के माध्यम से इस संकट को कम कर सकते हैं।

(प्रस्तुति: गजेन्द्र) ■

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 77 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा 'कृषि खबरें, देश विदेश की' जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्यः

एक प्रति : 50 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपये

संपर्क सूत्रः

प्रभारी, व्यवसाय एकक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : businessunitcar@gmail.com

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा